Year 3, Issue 9
Jan.-March, 2006

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR - PUBLISHER : SNEH THAKORE

कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

संपादन व प्रकाशन
स्नेह ठाकुर

वर्ष ३ - अंक ९, जनवरी-मार्च २००६

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : स्नेह ठाकुर

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
माँ सरस्वती की वन्दना	स्वामी गीतानन्द गिरि	३
और हम इंसान बन सकें	विष्णु प्रभाकर	४
बेजो मुहब्बत से सबको जो दीजिये	आचार्य संदीप कुमार त्यागी 'दीप'	७
निचले फ्लैट में	डॊ. नरेन्द्र कोहली	८
दूरदर्शी	डॊ. दामोदर ख से	१२
शहीद रज्जब	विष्णु नागर	१३
किसने, किसने, किसने?	डॊ. रामकुमार गुप्त	१६
सम्बन्धों का समीकरण	डॊ. इन्द्रा भटनागर	१७
ग़ज़ल	अक्स लखनवी	२१
कलम के धनी प्रेमचन्द	सुभाषिणी खेतरपाल	२२
वसुधा-कुटुम्ब	अक्षय गोजा	२४
छल	बनाफ़र चन्द्र	२५
...ताकि बचा रहे जीवन	जय चक्रवर्ती	३१
उपहार	करुणाश्री	३२
चन्दन हो गया हूँ	डॊ. किशोर काबरा	३९
नियति	स्नेह ठाकुर	४०

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :
16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

संपादकीय (अंक ९, जनवरी-मार्च २००६)

'वसुधा' नये वर्ष में पदार्पण कर रही है। वसुधा का विगत वर्ष आनंददायी रहा। साहित्यकारों ने इसे समृद्ध किया व पाठकों ने सराहा। दोनों का अभिनन्दन।

'वसुधा' हिन्दी के प्रति माँ सरस्वती के लिए अंजुरी-भर अर्घ्य है, जिसमें सभी साहित्यकारों की रचना-धाराएँ मिश्रित हो प्रवाहित हो रही हैं और पाठकगण हृदय से उनका स्वागत कर रहे हैं। 'वसुधा' हिन्दी के उत्थान के लिए हम सबका मिला-जुला प्रयास है, परिश्रम है, माँ की वन्दना है।

नये वर्ष के शुभारम्भ में प्रायः हम सब कोई न कोई संकल्प लेते हैं। प्रवासी व अप्रवासी हर हिन्दी-प्रेमी अपने इन संकल्पों में यदि हिन्दी का प्रचार-प्रसार-विकास भी जो ले तो अति-उत्तम होगा। देश-विदेश में हमें हिन्दी के उत्थान के लिए एकाग्रता से जुटे रहना है।

'एकाग्रता से जुटे रहो
हिन्दी-सुमन-सुगंधि बिखेरते चलो
आज हैं हम जितने यहाँ
उनमें औरों को भी मिलाते चलो
हिन्दी का दायरा बढ़ाते चलो

है दम लोगों की एकता में
न समझो मामूली भी इसे
समाज की रीढ़ है यह भी ही
करेगी जिसे मुखर साहित्यकार की लेखनी
मिलकर दोनों बनाएँगी इतिहास गौरवशाली

एकाग्रता से जुटे रहो
हिन्दी-सुमन अर्पित करते चलो
बढ़े चलो, बढ़े चलो'

हमें घर-बाहर, समाज में हिन्दी का वातावरण बनाना है। नियमित रूप से यदि कोई पत्रिका घर में आती है, बैठक की मेज़ पर रखी रहती है, तो आते-जाते घर के हर सदस्य की नज़र उस पर प ती ही है। वह अनायास ही, जीवन के व्यस्त क्षणों में भी, आपको अपनी ओर खींचती है। और जब घर में उस पत्रिका की किसी भी रचना पर किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया होती है, तो हिन्दी की गूँज़ पूरे घर में गुंजायमान हो जाती है। यही गूँज अन्य स्थानों पर भी हिन्दी का वातावरण बनाने में समर्थ होती है।

पत्रिका या पुस्तकाकार में छपी रचना केवल शब्दों का टंकन ही नहीं है, यह तो सघन स्मृतियों का समूचा भाव-लोक है। वास्तव में अनेकानेक ऐसी रचनाएँ हैं जिन्हें पढ़ते ही मानव उन्हें अपने अन्तस् के किसी माया-लोक में सुरक्षित रख लेता है। भविष्य में जब कभी भी वह उस पढ़े हुए प्रभाव को याद करता है, अनायास ही, बिना किसी प्रयास के, अन्तस् के उस माया-लोक में आनन्द लेने के लिए पहुँच जाता है। इस प्रभाव को स्मृति के जादुई स्पर्श से कभी भी जिया और पाया जा सकता है। अच्छा साहित्य मानव की अमूल्य निधि है। यही भावी पीढ़ी की विरासत है। भाषा ही संस्कृति की वाहिनी है। संस्कृति को जीवित रखना है तो भाषा को जीवित रखना अति आवश्यक है।

'मातृ-भाषा उन्नति है सब उन्नति का मूल।'

'वसुधा' के साहित्यकार श्री दामोदर ख से जी को केन्द्रीय सरकार ने उनकी पुस्तक 'भूले बिसरे दिन' के लिए एक लाख के पुरस्कार से सम्मानित किया है। इस सम्मान की प्राप्ति हेतु अनेक बधाई। उनका सम्मान हिन्दी-जगत का सम्मान है।

गत वर्ष अमृता प्रीतम जी व निर्मल वर्मा जी के निधन से साहित्य जगत की अपार क्षति हुई है। ये दोनों अब भौतिक रूप से हमारे साथ नहीं हैं, पर अपनी रचनाओं के माध्यम से ये सदा हमारे साथ रहेंगे। साहित्य के प्रति इनकी निष्ठा को नमन।

नव वर्ष की मंगलकामनाओं सहित,

सस्नेह, स्नेह ठाकुर

माँ सरस्वती
की
वन्दना

स्वामी गीतानन्द गिरि

माँ
तू ही तो प्रसारती है
सृष्टि में वाक्‌शक्ति
कला, विचार, भक्ति।
ज्ञान, विज्ञान, अभिव्यक्ति
सबका स्त्रोत तू ही तो है।
माँ
इसलिए कि तू ही तो ओंकार है।
तुझसे ही जन्मते हैं
प्रतिभा के बीज
भाषाओं, संस्कृतियों की धारा का
मूल उद्‌गम तू ही तो है।
धन्य थे वे साधक ऋषि
जिन्होंने तुझे माँ कहा था।
बहती रहे तेरी पयस्विनी धारा
मिलता रहे सृष्टि को
शिव, सुन्दर और सत्य
चलता रहे परमार्थ का क्रम
टूटते रहें माया के भ्रम।
वर दे जगद्‌धात्री वर दे
मानव को पूर्ण कर दे।।

और हम इंसान बन सकें

विष्णु प्रभाकर

आजकल अकसर यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या साहित्यकार क्रांति कर सकता है? उत्तर बहुत स्पष्ट है, साहित्यकार स्वयं कभी क्रांति नहीं करता, वह मात्र क्रांति का मार्ग प्रशस्त करता है। जो कुछ घटता है वह सबसे पहले मनुष्य के मन में घटता है और मन का अधिष्ठाता देवता है 'साहित्य'। इसलिए साहित्यकार का मन उसे उस बिन्दु पर ले आ सकता है जहाँ से क्रांति का मार्ग फूटता है। यह प्रक्रिया पाठक के मन में नए-नए विचारों का उद्घाटन करती है। साहित्य तुरंत कुछ नहीं करता, पर वह एक निरन्तर प्रवाहमान प्रक्रिया अवश्य है।

ऐसा किसी बाहरी शक्ति के आदेश पर नहीं होता, अंतर के आदेश पर होता है; और अंतर का यह आदेश कोई वायवी वस्तु नहीं है। परम्परा के साथ-साथ वह उसके परिवेश और उसके चारों ओर फैले व्यापक वातावरण से प्रभावित और प्रेरित होता है। परम्परा भी स्वयं में कोई स्थिर वस्तु नहीं है, वह निरन्तर विकसित होती प्रक्रिया है।

यह भी सच है कि साहित्यकार के लिए शब्द प्रमुख नहीं हैं अर्थ प्रमुख है। वह शब्द की नहीं अर्थ की रचना करता है क्योंकि अर्थ शब्द से पहले होता है। शून्य पहले था, मनुष्य ने उसे शब्द दिया 'ख'। गति पहले थी, मनुष्य ने उसे शब्द दिया 'ग'। अर्थात् शून्य में जिसकी गति थी उसे हमने 'खग' नाम दिया। 'भारत' शब्द के मूल को लेकर विवाद है। हिन्दू मानते हैं कि यह देश शकुन्तला के पुत्र चक्रवर्ती भरत के कारण 'भारत' कहा जाने लगा। जैनी कहते हैं कि यह मान उसे जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ के पुत्र भरत चक्रवर्ती के कारण मिला। लेकिन कुछ विद्वान मानते हैं कि ये दोनों मान्यताएँ ही सही नहीं हैं। 'भा' शब्द का अर्थ 'भास्वर' अर्थात् प्रकाश है; यानी कि जिस देश में लोग प्रकाश की खोज में 'रत' हैं, वह भारत है।

शब्दों के सही अर्थ आपको किसी कोश में नहीं मिलेंगे; उन्हें जीवन में ही खोजा जा सकता है जैसे 'खोना और पाना' ये दो शब्द हैं। कोश में उनके भी अर्थ अलग-अलग दिए हुए हैं, लेकिन अनेक विद्वानों के लिए इनका एक ही अर्थ है, खोये बिना कुछ पाया जाता है क्या? तब खोना भी पाना हुआ।

कालजयी साहित्यकार युगों में एक पैदा होता है - जैसे वाल्मीकि, कालिदास, शेक्सपियर - इनके समय में और भी साहित्यकार रहे होंगे, पर काल की सीमा लाँघकर ये ही आज हमारे साथ हैं। इसलिए हैं कि उन्होंने अपनी रचनाओं में जीवन-मूल्यों की खोज की। तो साहित्य स्वयं एक खोज ही है, निरन्तर खोज। मोहब्बत की तरह निरन्तर खोज। फ़िराक गोरखपुरी अपने एक शेर में कहते हैं :

'न मंज़िल है, न मंज़िल का पता है
मोहब्बत बस रास्ता ही रास्ता है।'

कालिदास ने निर्भीक होकर गणिका पुत्री शकुन्तला को भरत जैसे चक्रवर्ती सम्राट की माँ बना दिया। उसने मनुष्य के अंतर की करुणा को ही नहीं जगाया पशु-पक्षियों, लता-गुल्मों को भी मनुष्य की संवेदना से आप्लावित कर दिया। कालिदास की शकुन्तला कोई व्यक्ति विशेष नहीं है, वह शाश्वत बेटी है। 'कण्व' शाश्वत 'पिता' हैं और दुष्यंत शाश्वत 'पुरुष' अर्थात् 'पति'।

अपने ही युग में देखेंगे तो पाएँगे कि अमेरिका में एक लेखिका हुई हैं 'एलिज़ाबेथ स्टो'। वह अत्यंत साधारण नारी थी। उसने एक उपन्यास लिखा 'टॉम काका की कुटिया'। उस उपन्यास ने अमेरिका में दासता मिटाने की भूमिका तैयार की। 'राष्ट्रपति लिंकन' की सफलता के पीछे वास्तविक शक्ति का स्त्रोत यही उपन्यास था लेकिन उसने किसी मंच से यह घोषणा नहीं की थी। उसने यथार्थ के पीछे के सत्य को पात्रों के माध्यम से प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया था। तभी 'लिंकन' को कहना प ा, 'इस नाटी औरत ने अमेरिका को हिला दिया।'

मनुष्य हर कहीं एक जैसा है, बावजूद ऊपरी भेदों के। हर कहीं वही पुरुष, वही नारी। शरतचन्द्र ने अपने प्रांत की भाषा में अपने प्रांत की नारी का चित्रण किया है, परंतु वह नारी भारत की नारी के रूप में लोकप्रिय हुई। देश-विदेश की अपनी यात्राओं में मैंने हर जगह इसी नारी को देखा

है। मैं मूल-भावना और चरित्र की बात कर रहा हूँ ऊपरी उपादानों की नहीं। माँ अपनी नैसर्गिक करुणा के साथ विश्व के सारे विस्तार में एक जैसी है। सत्य यही है, शेष यथार्थ तो सदा बदलता रहेगा। हर अनुभव उसकी पूँजी है, बशर्ते वह अपना दिल और दिमाग़ खुला रखे।

अनेक प्रांतों, अनेक भाषा-ग्रुपों और अनेक धर्मों की नारियों से मेरा परिचय हुआ इन यात्राओं के बीच। एक युवती का अपने पति से मन-मुटाव हो गया। नौबत तलाक तक की आ गई। उसके पति ने मुझे भी लपेट लिया क्योंकि मैं दो-तीन बार उनके घर ठहर चुका था। वह युवती सदा मुझे अपना पिता मानती रही। अंत में उनमें समझौता हो गया और वे दोनों मुझे बिल्कुल भूल गए। आज तक भूले हुए हैं। कितना सुन्दर कथानक है यह एक कहानी का।

ऐसे अनुभव मुझे दूसरे प्रसंगों में भी हुए। क्या यह आश्चर्यजनक बात नहीं है कि मैं कई महीने तक गाँधी हत्या काण्ड के केस में भी फँसा रहा केवल 'प्रभाकर' उपनाम के कारण। मैं 'इप्टा' के दिल्ली शाखा का अध्यक्ष रहा हूँ। उसमे आंतरिक कलह के कारण उसके एक पक्ष ने मुझ पर हत्या का अरोप लगा कर बकायदा पुलिस में रिपोर्ट भी कर दी। यह सब अनुभव क्या मेरी पूँजी नहीं बन गए।

इसी प्रसंग मे, 'अवारा मसीहा' की एक बार फिर चर्चा करूँ। एक सुधी समीक्षक ने लिखा कि 'अवारा मसीहा' लिखने के बाद मेरे लेखन में गांभीर्य आया। गांर्भीय आया हो या न आया हो, मेरी दृष्टि अवश्य व्यापक हुई। शायद बहुत घूमने, बहुत कुछ देखने के बाद 'शरद' के विचित्र चरित्र ने भी मुझे बहुत कुछ दिया। एक साफ महान् सर्जक और अनीति का प्रचारक - ऐसा कि बहुत से लोग उस 'चरित्रहीन' को अपने घर में भी घुसने नहीं देते थे।

इस पुस्तक का नाम 'अवारा मसीहा' रखा गया तो अनेक लोगों ने इसके अर्थ को समझा और इसकी सराहना की। अवारा व्यक्ति के पास सबकुछ होता है, शक्ति, कुछ कर गुज़रने की लालसा, उमंग, उल्लास। अंतर में वह वैरागी होता है। उसके पास बस एक चीज़ नहीं होती, 'दिशा'। जिस दिन उसे दिशा मिल जाती है, उस दिन वह सचमुच 'मसीहा' बन जाता है।

मैं अपने चार गुरु मानता हूँ - पहली गुरु हैं मेरी तपस्विनी 'माँ'। उन्होंने मुझे एक मंत्र दिया था, 'बेटा कभी चिन्ता मत करना। तेरा कोई काम कभी नहीं अटकेगा।'

दूसरे गुरु थे मेरे मामा जी। उन्होंने कहा था, 'बेटे, ज़िन्दगी ब ी निर्मम है। यहाँ पास होने के लिए सौ में सौ अंक लेने होते हैं।'

तीसरे गुरु मेरे अग्रज थे। उन्होंने मुझे स्वाध्याय और आशावाद का मंत्र दिया।

और चौथी गुरु थी मेरी जीवन-संगिनी, मेरी सहचरी। एक समय मैं घोर निराशा के तिमिर में घिरा हुआ था। तब उसने मुझे लिखा था, "दुनिया-भर को उपदेश देते हो कि 'भागो नहीं, दौ ो' और खुद भाग रहे हो। जी नहीं, आपको अभी बहुत आगे जाना है। बहुत दौ ना है।"

ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती है, मनुष्य का विश्वास भी ईश्वर में बढ़ता चला जाता है। पर मुझे लगता है कि मेरा विश्वास तो ईश्वर में घटता जा रहा है। मैं किसी की निन्दा नहीं करता, किसी से विवाद नहीं करता, अपने अंतर के विश्वास को किसी पर थोपना नहीं चाहिए। मैं तो केवल अपने विश्वास को जीने की पूरी स्वतंत्रता चाहता हूँ। इसके विपरीत इस संसार में हर मत वालों ने अपने विश्वास को दूसरों पर लादना चाहा है। लादा भी है, सेवा के बल पर लादा है। कितना रक्तपात हुआ इस प्रक्रिया में। इतिहास के पन्ने रँगे हुए हैं इस निर्मम सत्य से। इतना अन्याय किया राजसत्ता ने मनुष्य पर, मनुष्य के हित के नाम पर। आज २१वीं सदी में भी, जो विज्ञान और विवेक की सदी मानी जाती है, उसमें भी वही प्रक्रिया जारी है।

इस प्रक्रिया का एक दूषित परिणाम यह भी हुआ कि हमने विचार-स्वतंत्रता के नाम पर स्वार्थ का पोषण किया। प्रारंभ में जो एक सुनिश्चित विचार-धारा जान प ती है, कुछ ही दिनों में वह अनेक खण्डों में बँट जाती है। विचार विकसित होते हैं, तो विचार भेद भी संभव हैं; किसी सीमा तक आवश्यक भी हैं, पर प्रचीन काल में जिस तरह मत-मतांतर बटते रहे हैं आज उसी तरह राजनैतिक दल बट रहे हैं। उनके पीछे कोई स्वस्थ परम्परा नहीं दिखाई देती है। दिखाई देती है तो केवल व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा। गाँधी जी की विचारधारा तो कभी सत्ता में आई नहीं। उनका नाम अवश्य अवसरवादियों के लिए ढाल बन गया था; आज भी बना हुआ है।

'गाँधी-विचार' गाँधी के चित्रों तक सीमित हो गए हैं। यहाँ तक कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की भी कोई सुनिश्चित विचारधारा नहीं है। वह व्यक्ति के अनुसार ही रूप लेती रहती है। लेकिन मार्क्सवाद तो अभी कल तक आधी दुनिया पर शासन कर रहा था। एक सुनिश्चित विचारधारा थी उसके पास, वह भी ताश के पत्तों की तरह ढह गया। कितने मार्क्सवाद रूस, चीन, फ्रांस, इटली सभी की अपनी-अपनी व्याख्या। परिणाम जो हो सकता था वही हुआ। शक्ति बस एक शब्द तक सीमित हो गई। रूस इसका सबसे सटीक उदाहरण है। उसके व्यवहार से स्पष्ट हो गया है कि शक्ति जब शब्द तक सीमित रह जाती है तो अर्थ बालू की रेत की तरह बिखर जाता है। सत्ता के मोह में वे समझौता परस्त होते जाते हैं। समझौता अगर सामाजिक, आर्थिक दोषों से मुक्ति दिलाने के लिए न होकर सत्ता और स्वार्थ से जु ता है, तो वह अपराध है, अन्याय है।

इस तरह हम देखते हैं कि सारे ऊहापोह के बावज़ूद भारत के शासकों और शासितों सब की मानसिकता अभी भी सामंतवादी है। जिस तरह धार्मिक असहिष्णुता और मदांधता ने मनुष्य को जक ा है, वह क्या सामंती मानसिकता की देन नहीं है। बाबरी मस्ज़िद भूमि विवाद को ही लीजिए। राम तो ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं हैं फिर भी उनकी मान्यता को देखते हुए हम मान लेते हैं कि वे हैं, क्योंकि वे हमारे विश्वास में हाडमाँस के मानव से अधिक पैबस्त हो गये हैं। लेकिन यह भी कहा जाता है कि अयोध्या तो छः बार सरयू में डूब चुकी है, तब यह कैसे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि अमुक स्थान ही राम की जन्म-भूमि है। क्या हिन्दुओं ने इस दृष्टि से कभी सोचा? क्या मुसलमानों ने, जो यह कहते नहीं थकते कि, हमारा धर्म सबसे अधिक शांतिप्रिय है, कभी इस बात पर विचार किया कि राम हिन्दुओं के तन-मन में रमे हुए हैं। वे उनकी संस्कृति के प्रतीक हैं, बल्कि कहेंगे मानव-संस्कृति के प्रतीक हैं। ऐसी स्थिति में हमें उनके प्रति आदर और प्यार की भावना रखते हुए अपना दावा छो देना चाहिए।

काश ! दोनों महान् धर्मों के अनुयायियों ने इस मूल-भूत भावना पर विचार किया होता कि मनुष्य इस संसार में दूसरे के लिए जीने के वास्ते आया है। पिछले युगों में अनेक स्मृतियाँ बनीं। उस युग के मनीषियों ने उन्हें अपने युग के लिए बनाया होगा, पर वे अभी तक चली आ रही हैं और जाने-अनजाने अपमानित हो रही हैं। तब क्यों न हम अपने युग के लिए एक नई स्मृति बनाएँ। धर्म, जहाँ तक उसके दार्शनिक रूप का सम्बन्ध है, हर व्यक्ति को अधिकार होगा कि वह उसे चाहे किसी रूप में माने। ईश्वर तो अव्यक्त और अगोचर है, उसको लेकर कैसा विवाद। इस क्षेत्र में किसी को भी किसी दूसरे के विश्वास पर आक्रमण करने का अधिकार नहीं होगा। मैत्रीमूलक विचार-विनिमय हो सकता है, दृष्टि की खोज होनी चाहिए।

जहाँ तक सामाजिक रूप का संबंध है - विवाह, तलाक, विरासत आदि-आदि - इन सबके लिए यथासंभव एक नागरिक-संहिता होनी चाहिए। राजनीति और प्रशासन से किसी धर्म का संबंध नहीं होना चाहिए।

एक और अत्यंत महत्वपूर्ण बात यह है कि हमें सभ्यता और संस्कृति के भेद को समझना होगा। हमारे दिल और दिमाग़ पूर्वाग्रह से ग्रसित हैं। संस्कृति का विकृत रूप जाति, सम्प्रदाय, व्यक्ति सुख-सुविधाएँ, प्रभुसत्ता के मोह के रूप में हमारे अंतर में कैंसर की तरह पेबस्त हो गया है। नाना मत-मतांतरों और सम्प्रदायों की सामाजिक और राजनैतिक मान्यता वास्तविक मानवीय समानता को नष्ट करने वाली होती है। भाषा और साहित्य को धर्म से जो ना बहुत ख़तरनाक है।

सरकार किसी भी दल की हो, हमें सजग रहना होगा और यह सुनिश्चित करना होगा कि वह अल्पसंख्यकों को पूरे अधिकार दे। वोट के लालच में उनकी भावनाओं को भटकाकर अलग-अलग टापू बनाने का प्रयत्न न करें।

कहाँ से कहाँ पहुँच गए हम। साहित्यकार के दायित्वों की चर्चा करते-करते राजनीति की दलदल में फँस गए। पर शायद यह भी अनिवार्य था क्योंकि साहित्यकार इसी दलदल की ओर समाज का ध्यान आकर्षित करता है।

काश ! वह अपने प्रयत्नों में सफल हो सकें और हम इंसान बन सकें।

बेजो मुहब्बत से सबको जो दीजिये

आचार्य संदीप कुमार त्यागी 'दीप'

अब मन्दिरों औ' मस्जिदों को छो दीजिये,
बे ी फ़िज़ूल बन्दिशों की तो दीजिये।
पहले भले रही हो पाक साफ ये जगह,
अब ग़न्दगी पै इनकी ज़रा गौर कीजिये।

हैं असलहा के मसलों पै सलाह मशविरे,
मज़हब के नाम पर कहाँ हैं तालिबाँ गिरे।
मस्जिद मदरसे बम्ब के गोदाम हो गये,
कोहराम राम मन्दिरों में आम हो गये,
हैं सबही ढके ढोंग ढोल फो दीजिये।

शैतानियत का नंगा नाच हो रहा यहाँ,
इंसानियत की होती थीं इबादतें जहाँ।
भगवान हो भगवान का तो मान भी रक्खो,
इंसान की हर हरक़तों पै ध्यान भी रखो,
अब भी है वक्त वक्त का रुख मो दीजिये।

है इल्तज़ा सजा सियाह सियासतों को दो,
नक्शे से पाप की मिटा रियासतों को दो।
मालिक न कोई भी कहीं पै तानाशाह हो,
बस प्यार ही हरेक दिल पै बादशाह हो,
बेजो मुहब्बत से सबको जो दीजिये।

निचले फ्लैट में

डॉ. नरेन्द्र कोहली

वह अँधेरे में आँखें फा` एकटक छत को घूर रही थी। वस्तुतः वह आँखों से काम नहीं ले रही थी। वे तो ऐसे ही खुली थीं। उसकी सारी एन्द्रिय शक्तियाँ, उसके कानों में सिमट आयी थीं। वह केवल सुनने का प्रयास कर रही थी, वह कैसी आवाज़ थी? सचमुच कोई आवाज़ थी भी या केवल उसका भ्रम ही था?

सहसा उसकी पूरी खुली आँखें और फैल गयीं, पर उनमें स्थिरता का भाव बदल गया था। उनमें भावशून्यता के स्थान पर अब एक निश्चित भाव आ गया था। वह भय था। उसके चेहरे की तनी रेखाएँ शिथिल प कर भय से विकृत-सी हो गयी थीं। अँधेरे में भी उसके चेहरे का रंग बदलता-सा लग रहा था, पीलेपन की ओर।

काफी प्रयत्न के पश्चात् उसने जीभ से अपने होंठ गीले किए और एकदम निःशब्द करवट बदल ली। उसने बहुत धीमे से अपने पति को छुआ। गहरी नींद में पति पर छुअन का कोई प्रभाव नहीं प ा। उसने पूरी ताकत से अपनी अँगुलियाँ पति की बाँह में ग ानी आरम्भ कर दीं।

पति ने झपाक से आँखें खोल दीं। उन आँखों में जिज्ञासा का भाव था। शायद वह नहीं समझ पाया था कि उसकी नींद कैसे टूट गयी। उसने आँखें खोल भर दी थीं, पर जाग जाने का कोई भाव अभी उसके चेहरे पर नहीं आया था।

वह बहुत धीरे से फुसफुसाकर बोली, 'ज़रा सुनना ! मुझे तो नीचे कुछ खटका-सा सुनाई प रहा है।'

पति ने भी उसके ही समान नीचे की ओर कान लगा दिए। उसके उनींदे चेहरे पर भी खिंचाव आ गया, जैसे अकस्मात् ही वह पूरी तरह जाग गया हो। पर फिर उतनी ही तेजी से उसके चेहरे पर निश्चिंतता पुत गयी।

'कुछ भी नहीं है।' उसने कहा और करवट बदल ली।

वह कुछ देर चुपचाप, निष्क्रिय-सी अपने पति को देखती रही और फिर जैसे किसी भीषण आशंका से एकदम सहम गयी। पति को जगा कर उसके मन में जो बल और चेहरे पर कुछ बेफिक्री आयी थी, वह फ्यूज उ गए बिजली के बल्ब के समान तुरंत ही बुझ गयी। वह पहले से भी अधिक डर गयी थी - यह करवट बदल कर अभी सो जायेगा और वह उसी तरह जागती रहेगी, अकेली की अकेली। और तभी उसके मन में भय के साथ खीझ भी घुल गई। साथ के पलंग पर उसका पति सोया हो, तो फिर क्यों वह इस प्रकार भयभीत काँपती रहे?

उसने कुछ सख्त हाथों से पति को हिलाया। उसकी आवाज़ भी भय के स्थान पर खीझ से भर गयी थी, 'मैं कहती हूँ, नीचे कोई है। तुम्हारे करवट बदल कर सो जाने से वे लोग भाग जाएँगे क्या?'

उसके पति ने घूम कर उसे देखा, 'तुम्हें भ्रम हो रहा है। खुद भी डर के मारे सो नहीं पातीं और मुझे भी सोने नहीं देतीं।'

पर अब उसकी आवाज़ में निश्चिंतता नहीं थी। वह समझ गयी कि जो कुछ वह कह रहा है, उसमें वह स्वयं भी विश्वास नहीं रखता। 'तुम देखो तो सही कि कोई है या नहीं।' वह बोली।

पति ने उठने का कोई उपक्रम नहीं किया। वह वैसा का वैसा ही लेटा रहा, 'यदि कोई है भी तो नीचे के फ्लैट में ही है न ! तुम्हें क्या चिंता है ! तुम्हारे घर में तो नहीं आया ! तुम चुपचाप सो रहो।'

उसे लगा, धीरे-धीरे उसके मन में से चोरी की आशंका समाप्त होती जा रही है और अपने पति के प्रति खीझ बढ़ती जा रही है। सहसा वह कुछ सचेत भी हो गयी। कहीं वह जोर से चींख ही न प`। नीचे पता नहीं कोई चोर आया है या नहीं। हो सकता है, घर वालों में से ही कोई किसी कारण से जगा हुआ हो। कहीं वह जोर से बोल प ी तो रात के इस सन्नाटे में उसकी आवाज़ उसके

कमरे में ही सीमित नहीं रहेगी। कहीं लोग यही न समझ बैठें कि वह दोनों पति-पत्नी इतनी रात गए भी ल ते ही रहते हैं।

इस फ्लैट के विषय में उसने पहले ही प ोसियों से काफी सुन रखा था। सब लोगों का विचार था कि यहाँ जो भी दम्पति आते हैं, आपस में अवश्य ल ते हैं। अब तक वे बचे हुए थे। फिर क्यों आधी रात को चींख कर वह बदनामी मोल ले ! कल सुबह ही सुबह प ोस की औरतें कानाफूसी करती फिरेंगी कि रात को उनकी ल ाई हुई थी।

नीचे फिर कोई आवाज़ हुई थी। शायद अलमारी खोलने की। हाँ. . . .निचले फ्लैट के पिछले बेडरूम से ही आवाज़ आ रही थी। उसी कमरे में उन्होंने लोहे की अपनी ब ी अलमारी रखी हुई थी। नीचे वाली मिसेज चाँद ने उसे बताया था कि पिछली बार घर बदलते हुए वह अलमारी सीढ़ियों में फँस गई थी और एक ओर से उसमें चिब्ब-सा प गया था। तभी से खोलने-बंद करने में उसका दरवाज़ा आवाज़ करने लग गया था।

यह आवाज़ भी वैसी ही थी, जैसे किसी ने उस अलमारी का दरवाज़ा खोला हो। पर इस समय उन्हें अलमारी खोलने की क्या आवश्यकता थी? कहीं ऐसा तो नहीं कि चोरों ने छुरा या पिस्तौल दिखा कर चाँद साहब से अलमारी की चाबियाँ ले ली हों और अब अलमारी का सारा सामान निकाल रहे हों. . . .

उसका हाथ अचानक ही फिर पति की बाँह पर जा प ा, 'सुनो ! नीचे किसी ने अलमारी खोली है। तुम एक बार देखो तो।'

पति ने मु कर उसकी ओर देखा भी नहीं। वह उसी प्रकार लेटा रहा, 'कोई अपने घर में अपनी अलमारी खोले तो मेरा देखना जरूरी है क्या?'

'कोई इस समय अपनी अलमारी क्यों खोलेगा?' उसकी आवाज़ कुछ तेज़ हो गयी।

'देखो,' उसका पति उसकी ओर मु ा, 'तुम पढ़ी-लिखी और समझदार औरत हो। पुरुषों के समान, उनकी बराबरी करती हुई नौकरी करती हो। अब औरतों वाली इन घटिया बातों को छो दो। यह किसी इंटेलिजेंट और इंटेलैक्चुअल महिला का-सा व्यवहार नहीं है. . . .'

'क्या मतलब?' उसकी भवें प्रश्न में तन गयीं।

'क्या तुम्हें नहीं लगता,' 'पति ने कहा, 'कि लोगों के कामों में इस प्रकार हस्तक्षेप करना या उनकी ऐसे खोज-खबर रखना छिछोरापन है? कोई अपने घर की अलमारी कब और क्यों खोलता है - तुम्हें इससे क्या मतलब? और न ही अलमारी बनाने वाली कंपनी ने ऐसा कोई नियम बनाया है कि रात को दस बजे के पश्चात् अलमारी नहीं खोली जा सकती।'

वह झेंप-सी गयी। पति ने फिर उसकी दुर्बलता की ओर संकेत कर दिया था, वह इस तथ्य के प्रति सचेत थी। बहुत प्रयत्न करने पर भी उससे कुछ न कुछ ऐसा हो जाता था, कि उसके पति को उसे अबौद्धिक कहने का अवसर मिल जाता था। उसे अपने ऊपर भी झुँझलाहट हो आयी। आखिर वह क्यों आधुनिक जीवन को अपना नहीं पाती? वह अपने आस-पास के लोगों से क्यों उदासीन नहीं हो पाती? यदि नीचे के फ्लैट में चोर घुस ही आए हैं, तो उसे क्या? वे उसके घर में तो अभी नहीं आए हैं। तो फिर वही क्यों पुरानी मुहल्लेदार औरतों के समान सबकी खोज-खबर रखती है. . . .

और तभी नीचे जैसे किसी नारी-कंठ से निकलती घुटी-घुटी चीख को किसी ने सख्त हाथों से दबा दिया. . . .वह घबराहट में ही उठकर पलंग पर बैठ गयी।

उसने अपने पति की ओर देखा। वह अब भी उसकी ओर पीठ किए प ा था। उसने अपने दोनों हाथों से उसकी बाँह कसकर पक ली और फिर पूरी ताकत से अपनी ओर खींच लिया। उसने देखा, उसका पति पूरी तरह जागा हुआ था। उसकी आँखें भय से फैली हुई थीं। उसके चेहरे का रंग एकदम रक्तशून्य-सा हो गया था और वह एकदम डूबा-डूबा-सा लग रहा था. . . .

तो चींख उसने भी सुनी थी !

सचमुच ही नीचे चोर आए हुए हैं क्या? उसकी आशंका ठीक है। नीचे कुछ बहुत भयंकर घट रहा है। हो सकता है, उन्होंने किसी की हत्या कर दी हो। या फिर चाँद साहब की जवान ल की रत्ना. . . .

'उठकर जरा देखो तो।' उसने बहुत धीमे और डरे हुए स्वर में पति से कहा।

वह उसी प्रकार फटी-फटी आँखों से उसे देखता रहा और फिर हकलाकर बोला, 'हो सकता है, उनका अपना कोई घरेलू झग ा हो।'

तो भी तुम देखो।' वह फिर फुसफुसाकर बोली।

'मान लो,' पति ने थूक निगली, 'कि चोर हुए भी तो क्या मैं उनसे हाथापाई करूँगा?' और वह कुछ उत्तेजित हो उठा, 'तुम यह पसंद करोगी कि कल सवेरे अखबार में लोग पढ़ें कि एक प्रोफेसर साहब शहर के बदनाम गुंडों से हाथापाई करते पाये गये? आखिर हमारी कुछ इज़्ज़त है। हमारे प्रोफेशन की कुछ डिगनिटी है, मैं इतना गिर नहीं सकता।'

उसने देखा उसके पति के चेहरे और उसके मुँह से निकलते हुए शब्दों में कोई सामंजस्य नहीं था।

वह निष्क्रिय, ज -सी बैठी, अँधेरे में घूरती रही। उसके भीतर कहीं सूक्ष्म यायवीथू भावनाएँ स्थल रूप धरती जा रही थीं।....नहीं....वह उसका भ्रम या संदेह मात्र ही नहीं था। सचमुच ही नीचे कुछ हो रहा था। और जो कुछ हो रहा था, वह साधारण या सहज नहीं था....और उसके पेट की निचली सतह से ऐंठन-भरी एक पी ा-सी उठी....

नीचे की स्तब्ध नीरवता के विरुद्ध किसी की बहुत हल्की-हल्की सिसकियाँ उठ रही थीं। वे इतनी हल्की और धीमी थीं कि उस नीरवता को भंग भी नहीं कर पा रही थीं - उसको धकेलने के-से भाव से छू मात्र रही थीं....और फिर शायद कोई पुरुष-कंठ, बहुत धीरे-धीरे कुछ कह रहा था, समझाने के-से अंदाज में....

पति ने उसकी ओर देखा। वह फिर कोई लम्बी बात कहने जा रहा था, 'देखो, दुनिया में सब तरह के लोग होते हैं और सब तरह की बातें होती रहती हैं। हम उनका क्या कर सकते हैं? किसी तरह अपनी इज़्ज़त बनी रहे, यही काफी होता है। शरीफों का ढंग यह होता है कि ऐसी बातों से बचकर, कतराकर निकल जाएँ।....तुम समझती हो कि हमारे घर में कोई चोर घुस आएगा तो लोग हमारी सहायता को आएँगे....'

पति पता नहीं क्या-क्या कहता जा रहा था। वह उसकी बात नहीं सुन रही थी। नीचे क्या हो रहा था, वह बात भी उसके मस्तिष्क ने किन्हीं अज्ञात धुँधलकों में धकेल दी थी। उसे लग रहा था कि वह बहुत भयभीत है....भय जैसे किसी अचानक बिल्ली के समान उसके घर की सीढ़ियाँ बहुत धीरे-धीरे चढ़ रहा था....

उसने अपनी दृष्टि फिर पति पर टिका दी। वह कह रहा था, 'आखिर इतने सारे दुष्ट देशों की बिरादरी में हमारा देश भी तो जी रहा है न ! लोग चाहे कुछ भी करें, मगर यही सही तरीका है। तुम ही बताओ और कौन-सा रास्ता हो सकता था....'

'यदि वे लोग हमारे घर में भी घुस आये तो?' वह बोली, ड्राइंगरूम का शीशा तो कर भीतर घुसना भी कुछ कठिन नहीं है। वे लोग ब ी सुविधा से हम तक पहुँच जाएँगे....उसका गला एकदम सूख गया था, 'पता नहीं वे कितने लोग हैं। उनके पास छुरे हो सकते हैं, पिस्तौलें भी, आजकल यह सब कितना आम हो गया हैं....'

पति के चेहरे पर कुछ वैसे ही भाव जमा हो रहे थे, जैसे बहुधा उसके विरुद्ध कुछ कहने पर उसके चेहरे पर आ जाते थे। और सहसा ही वह चुप हो गयी। पति के चेहरे से लग रहा था, जैसे वह अभी ही रो प ेगा। उसके चुप होते ही, पति जैसे रोते-रोते चीख प ा, 'आखिर इस समय इस सारी बकवास का क्या मतलब है? यदि छुरे और पिस्तौलें दिल्ली में आम हो गयी हैं तो क्या इसमें मेरा दोष है? तुम्हारा ख़याल है कि मैं यहाँ का पुलिस कमिश्नर लगा हुआ हूँ? सरकार के निकम्मेपन के लिए, मुझसे ज्यादा तुम जिम्मेदार हो। मैंने चुनाव के समय कहा भी था कि इस पार्टी को वोट मत दो। पर तुम मेरी कोई बात मानती भी हो?'

'तुम अजीब आदमी हो !' बहुत रोकने पर भी उसकी घुटन जैसे बाहर फूट निकली, 'जब भी कोई मुश्किल आ प ती है, तुम मुझसे ल ने लगते हो ! इस सब में मेरा दोष है? देश की सरकार निकम्मी है, पुलिस बेईमान है तो मेरा दोष है? नीचे के फ्लैट में चोर घुस आए हैं तो क्या उन्हें मैं बुलाकर लाई हूँ? वे लोग हमारे घर में घुस आएँगे तो उसमें भी मेरा दोष होगा?'

'तुम्हारा नहीं तो मेरा दोष होगा क्या?' पति ऐसे झपट कर उठा, जैसे उसे मार बैठेगा, 'जब मैं कह रहा था कि शीशे वाली खि कियों में लोहे की ग्रिल्स लगवा लेते हैं और शीशे के दरवाज़ों के

पीछे लक ी के दरवाज़े, तो तुम्हीं ने मना कर दिया था। तब तो तुम्हें घर की सुन्दरता चाहिए थी। तब क्यों नहीं सोचा था कि कोई रात को शीशा तो कर, छुरे समेत घर के भीतर घुस सकता है?'

वह हतप्रभ-सी उसे देखती रही। वह ठीक कह रहा था, उसी ने ग्रिल्स लगवाने का विरोध किया था, पर वह बात और थी। यह तो इसकी पुरानी आदत थी।

'अच्छा चलो, ग्रिल्स के लिए मैंने मना किया, पर तुम मेरी बात मान क्यों गये? बात असल में ग्रिल्स की नहीं है। तुमको कोई अवसर मिलना चाहिए मुझे डाँटने का।' वह बोली, 'कल बाजार में तुमने मुझे डाँट दिया था, उसका कोई कारण था क्या. . . ?'

सहसा ही दोनों एकदम चुप हो गये। नीचे फिर कुछ हलचल हुई थी। कुछ लोगों के बाहर निकलने का-सा स्वर था। फिर शायद किसी ने ऊपर आने वाली सीढ़ियों के दरवाज़े को छुआ था, कुछ जोर भी लगाया था।

वे दोनों एक-दूसरे की ओर देखते रहे।

'अब हमें सो जाना चाहिए।' पति ने कहा

'क्या वे लोग ऊपर भी आएँगे?' पत्नी ने घुटी-घुटी-सी आवाज़ में कहा।

'पता नहीं।' पति ने अपनी आँखों का पानी पोंछ लिया। उसके मुँह में जब ों की पेशियाँ कुछ खट्टा-खट्टा-सा पानी छो रही थीं। उसका जी हो रहा था, वह रो प े, जोर-जोर से।

पत्नी ने दोनों हाथ अपनी छाती पर रख लिए थे, वह उठ कर ख ी हो गयी थी।

'मैं क्या करूँ? मैं क्या करूँ?' उसने अपने हाथ जोर-जोर से झटकने आरम्भ कर दिए। उसकी आवाज़ फट गई थी और वह रोने लगी थी। उसकी इच्छा हो रही थी कि उसका पति उसका सिर अपनी गोद में रख कर, उसे प्यार करे। पर वह कुछ भी नहीं कर रहा था।

सहसा पति रोते-रोते नाराज़ हो गया, 'तुम बिस्तर में आकर लेट क्यों नहीं जातीं? ऐसे उन्हें पता चल जाएगा कि हम जाग रहे हैं !'

'वे आ जाएँगे ! वे आ जाएँगे?' पत्नी फिर हाथ पटक-पटककर रोने लगी।

'तुम आकर लेट जाओ।' पति ने डाँटा, 'वे आ जाएँगे तो क्या हुआ? जो उनके मन में आयेगा, उठा कर ले जाएँगे। हमारे घर में रखा ही क्या है?'

'रखा क्यों नहीं !' पत्नी फटी हुई आवाज़ में बोली, 'अभी तो आज ही सुबह मैं अपना वेतन लायी हूँ। पूरे पाँस सौ रुपये घर में प े हैं। और तुम उनकी हिफ़ाजत भी नहीं करोगे !'

पति फिर से नाराज़ हो गया, 'मैं तो बहुत दिनों से समझता आ रहा हूँ कि तुम्हें अपने रुपये मुझसे अधिक प्यारे हैं। तुम जानती हो कि उनके पास हथियार हैं, फिर भी तुम चाहती हो कि मैं तुम्हारे पाँच सौ रुपयों के लिए उनसे ल ूँ ! तुम चाहती हो मैं इतने-से रुपयों के लिए अपने प्राण दे दूँ !'

पर पत्नी पर कोई प्रभाव नहीं प ा। वह उसी प्रकार रोती रही, 'तुमको मरने को कौन कहता है ! पर मैं तुम्हें कब से जगा रही थी। तब तुम उठे होते, तो अब तक पुलिस को भी बुला लाते।'

'पुलिस !' पति ने घृणा से नाक सिको ी, 'एक तो वे लोग मुझे पुलिस तक पहुँचने ही नहीं देते। और फिर पुलिस भी उनसे मिली हुई होती है।'

वह चुप हो गया, जैसे हलक सूख गया हो।

सीढ़ियों के दरवाज़े पर जोर कुछ अधिक प ने लगा था।

पत्नी ने पति की ओर देखा। अब किसी के भी चेहरे पर शिकायत नहीं थी। वह आकर चुपचाप उसके पास लेट गयी।

'अब क्या होगा?' उसने पूछा।

'कुछ नहीं होगा।' वह बोला, 'तुम चुपचाप लेटी रहना, जैसे सोयी प ी हो। वे जो चाहे ले जायें, हम चीज़ों के पीछे अपने प्राण तो नहीं दे सकते। आखिर हम अच्छा-खासा कमाते हैं। भगवान हमें और देंगे।'

'और यदि. . . यदि. . . .' पत्नी का कंठ फिर से छिलने लगा, 'उन्होंने मुझे छे ा?'

एक क्षण के लिए पति मौन रह गया।

'नहीं, तुम्हें नहीं छे ेंगे।' वह बहुत धीरे से बोला, 'तुम अब उतनी जवान नहीं हो।'

'फिर भी, यदि वे छे ें तो?' पत्नी और भी डरी हुई थी।

'फिर क्या?' पति दार्शनिक स्वर में बोला, 'कोई क्या कर सकता है ! जो भाग्य में होगा, होकर रहेगा। प्राण देने में तो कोई समझदारी नहीं है !'

'हाँ ! मैं अभी मरना नहीं चाहती।' वह पति के साथ सट गयी।

'हाँ ऽ ऽ।' पति ने उदासीनता से कहा, 'आखिर चाँद साहब भी तो सारी बात छिपा ही जायेंगे न !'

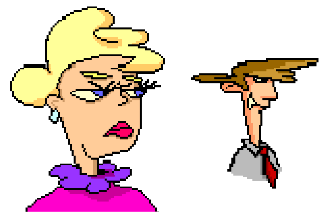

दूरदर्शी

डा. दामोदर ख से

भी   के साथ
भागते हुए
मेरे कदम
अपना अस्तित्व खो बैठे हैं
और अब किसी के भी पक्ष में
मेरा आधे से भी अधिक हाथ
उठ जाता है. . . .
लोग कहते हैं,
मैं द्विमुखी हो गया हूँ,
जी नहीं, मैं दूरदर्शी हो गया हूँ।

मैंने सुना था,
यह दुनिया एक 'इको प्वाइंट' है
पर शायद मैंने गलत सुना
क्योंकि मेरी हर 'हाँ'
'ना' में वापस आती है
इसलिए अब मैंने ही
'हाँ' का 'हाँ' से
और 'ना' का 'ना' से
नाता जो   दिया है
मैं ही 'इको प्वाइंट' हो गया हूँ।

उगते सूरज को,
देखने के अपराध में
मेरी आँखें
उल्टी कर दी गई हैं
अब मैं
अंतर्मुखी हो गया हूँ,
मैं दूरदर्शी हो गया हूँ।

शहीद रज्जब

विष्णु नागर

वह पटरी पर सो रहा था। सो रहा था कि एक ट्रक उसके ऊपर चढ़ गया। वह उसी वक्त, वहीं, मर गया। पता भी नहीं चला कि वह कराहा था या नहीं।

ऐसा रोज़ होता है इस शहर में। इसके पास वाले और उसके भी पास वाले शहर की यही एक विशेषता है। आदमी मर जाता है। ड्राइवर भाग जाता है। चार लाइन की ख़बर छप जाती है। जो फुर्सत में होता है, वह पढ़ लेता है। जो व्यस्त होता है, वह नहीं पढ़ता। फ़र्क दोनों में से किसी को नहीं प ता।

लेकिन उसकी किस्मत कि वह प्रधानमंत्री के चुनाव क्षेत्र का था। ख़बर में यह लिखा था। किसी हितैषी ने प्रधानमंत्री के हित में यह बात पढ़ ली और उन तक पहुँचा दी। बस फिर क्या देर थी। प्रधानमंत्री पुष्प चक्र लेकर अस्पताल पहुँच गए - शव पर चढ़ाने।

इस बात से अस्पताल तो अस्पताल पूरी दिल्ली में ह कंप मच गया। संवाददाता पछताने लगे, हाय वे क्यों नहीं उस वक्त वहाँ थे। फोटोग्राफर रोने लगे कि उन्हें एक महत्वपूर्ण फोटो से वंचित कर दिया गया है। बहरहाल रज्जब का शव, शव-गृह से बाहर निकाला गया। बाहर खुले में रखा गया। अस्पताल वालों की ओर से भी खूब फूल-मालाएँ चढ़ाई गईं। शव को इत्र-फूलों से सुगन्धित किया गया।

प्रधानमंत्री के बाद तो अस्पताल में मंत्रियों का ताँता लग गया। हो मच गई कि प्रधानमंत्री के बाद दूसरे नम्बर पर कौन अस्पताल पहुँचता है। मंत्रियों की कारों में रेस होने लगी। कई बार वे 'रेड लाइन' बसों की तरह टकराते-टकराते बचीं लेकिन टकराई नहीं। गृह मंत्री, वित्त मंत्री से और वित्त मंत्री, रक्षा मंत्री से और रक्षा मंत्री, उद्योग मंत्री से पहले अस्पताल पहुँच गये। वाणिज्य मंत्री, उद्योग मंत्री से ५-६सेकेन्ड बाद अस्पताल पहुँच पाए। उन्हें यह नागवार गुजरा। उन्होंने प्रधानमंत्री कार्यालय से शिकायत की कि उन्हें समय पर इसकी ख़बर क्यों नहीं दी गई थी। वह इस बात से इतने उत्तेजित हुए कि उन्होंने स्वयं प्रधानमंत्री से व्यक्तिगत रूप से मिल कर इसकी शिकायत की।

विपक्ष के नेता को भी इसकी ख़बर देर से ही लगी। उन्होंने पहले प्रधानमंत्री कार्यालय के इस व्यवहार पर खेद प्रकट करते हुए एक पत्र लिखा। फिर वे भी अस्पताल पहुँचे। उन्होंने न केवल शव पर पुष्प चक्र चढ़ाये बल्कि उस आदमी का नाम भी पता किया। उसके बाद पार्टी कार्यालय जा कर उन्होंने एक शोक सन्देश जारी किया, जो इस प्रकार था :

'हमारी पार्टी शहीद रज्जब खाँ वल्द बन्ने खाँ की असामयिक मृत्यु पर अपना गहरा शोक व्यक्त करती है और मृतक के परिवार के प्रति अपनी गहरी सहानुभूति प्रकट करती है। जब प्रधानमंत्री के चुनाव क्षेत्र का आदमी राजधानी की स क पर इस तरह मारा जा सकता है तो इस बात की तो कल्पना करना भी मुश्किल है कि उन क्षेत्रों के निवासियों के साथ यहाँ क्या गुज़रती होगी, जहाँ से विपक्षी दलों के सदस्य चुन कर लोकसभा और विधानसभाओं में आये हैं।'

'हमारी पार्टी शहीद रज्जब के असामयिक और दुखद निधन पर अपनी पार्टी का ध्वज एक दिन के लिए आधा झुकाएगी। हमने शहीद रज्जब के शोकाकुल परिवार को सहायता के रूप में १०००रुपये देने का निर्णय भी किया है। उनकी शवयात्रा कल सुबह ११बजे हमारी पार्टी के कार्यालय से निकलेगी। इसमें पार्टी के सदस्य हजारों की संख्या में शरीक होंगे। शहीद रज्जब का शव प्रधानमंत्री निवास के बाहर भी कुछ देर के लिए रखा जाएगा ताकि देश के साथ-साथ अपने निर्वाचन क्षेत्र की जनता की उपेक्षा करने वाले इस प्रधानमंत्री की आँखें खुल सकें। हमारी पार्टी शहीद रज्जब की स्मृति

में एक कोष की स्थापना भी करने जा रही है जिसमें उदारतापूर्वक दान देने की अपील सभी लोगों से की जा रही है। शहीद रज्जब की एक प्रतिमा भी उस स्थान पर स्थापित की जाएगी, जहाँ उनका आकस्मिक निधन हुआ है।'

'शहीद रज्जब खाँ उन बिरले इंसानों में से थे, जिन्होंने ईंटें ढो-ढोकर देश की महती सेवा की है। भूखे रह कर, स क पर सोकर, देश को आगे बढ़ाने के प्रति उनकी निष्ठा अटूट थी। देश को उनकी अभी बहुत जरूरत थी। लेकिन क्रूर नियति और प्रधानमंत्री की लापरवाही ने उन्हें हमसे छीन लिया है। उनके निधन से देश को जो अपूरणीय क्षति हुई है, उसे भरा नहीं जा सकेगा।'

प्रधानमंत्री हालाँकि राजनीति के बहुत पुराने खिला ी थे और वे विपक्ष के नेता को तब से जानते थे, जब वे स्वयं भी विपक्ष में थे, फिर भी उन्होंने सपने में भी नहीं सोचा था कि विपक्ष के नेता इस घटना को इस तरह का मो दे देंगे। प्रधानमंत्री का उद्देश्य साफ था। चुनाव नज़दीक आ रहे थे। रज्जब के शव पर पुष्प चक्र चढ़ा कर वे अपने क्षेत्र की जनता को खुश करना चाह रहे थे। लेकिन लेने के देने प गये थे। प्रधानमंत्री ने महसूस किया कि उनके हाथ से पहल निकल रही है। इस तरह तो सारा श्रेय विपक्ष ले जायेगा। यह ठीक नहीं है। ऐसा नहीं होना चाहिए।

उन्होंने जवाबी वक्तव्य दे दिया। उन्होंने देश की जनता को 'लाश की राजनीति' करने वाली शक्तियों से सावधान किया। उन्होंने वक्तव्य में कहा :

'शहीद रज्जब मेरे चुनाव क्षेत्र के व्यक्ति थे। उनसे मेरा लगाव स्वाभाविक था। उनकी इस तरह मृत्यु से मुझे गहरा धक्का लगा था। इसी कारण मैंने अस्पताल जाकर मृत आत्मा के प्रति सम्मान व्यक्त करना ज़रूरी समझा था। अगर विपक्ष जिम्मेदार होता तो उसके नेता मेरी इन हार्दिक भावनाओं को समझते और ऐसा कोई काम नहीं करते जिससे दुख की इस घ ी में अनावश्यक विवाद पैदा होता। यह 'लाश की राजनीति' करने का नहीं, देश को आगे ले जाने का वक्त है। हम इस काम में तेजी से लगे हुए हैं। इससे घबराकर विपक्ष ओछी हरक़तों पर उतर आया है। इससे जनता के सामने विपक्ष का चेहरा बेनक़ाब हो गया है।'

'बहरहाल आज प्रातः हुई मंत्रिमंडल की आपात बैठक में यह निर्ण्य लिया गया है कि शहीद रज्जब का शव पूरे राजकीय सम्मान के साथ कल शाम चार बजे दफनाया जाएगा। कल दोपहर एक बजे तक शहीद रज्जब के शव को प्रधानमंत्री निवास पर जनता के दर्शनार्थ रखा जाएगा। ऐसा उन लोगों के प्रति राष्ट्र की ओर से सम्मान व्यक्त करने के लिए किया जा रहा है जो पटरी पर सोते हुए इस तरह शहीद हो जाते हैं। सरकार इस प्रकार शहीद रज्जब का ही नहीं, सारे देश की गरीब जनता के प्रति अपनी चिन्ता और सम्मान का इज़हार कर रही है। सरकार के इस कदम से उन सबके मन में आत्म-सम्मान की भावना जागेगी जो ईंट-गारा ढोकर राष्ट्र की अमूल्य सेवा करते हुए आकाश की चादर के नीचे सोते हुए त्याग और बलिदान के उच्च आदर्श स्थापित कर रहे हैं।'

'सारे राष्ट्र की ओर से शहीद रज्जब का मरणोपरांत इस तरह सम्मान करने से लाश की राजनीति करने वालों के हाथों से एक और अवसर जाता रहेगा। यह सरकार जनता के अटूट समर्थन से बनी है और यह कभी इस तरह की राजनीति की इजाज़त नहीं देगी। मंत्रिमंडल का यह भी फैसला है कि शहीद रज्जब के परिवार के हर व्यक्ति को सरकार की राहत योजनाओं में काम दिया जायेगा। अगर शहीद रज्जब के परिवार का कोई भी व्यक्ति पढ़ा-लिखा पाया गया तो उसे उपयुक्त रोज़गार देने पर विचार किया जाएगा। यह भी देखा जा रहा है कि क्या नियमों के तहत शहीद रज्जब की विधवा को पेंशन दी जा सकती है। अमर शहीद रज्जब की कोई संतान पढ़ने को उत्सुक होगी तो उसे मुफ़्त शिक्षा और पुस्तकें दी जायेंगी। इसके अलावा रज्जब के परिवार की सहायता के लिए समय-समय पर और भी जो प्रस्ताव सरकार तक विचारार्थ लाए जायेंगे, उन पर गौर किया जाएगा।'

प्रधानमंत्री के इस वक्तव्य के साथ रज्जब के शव पर सरकारी कब्जा हो गया। उसके परिवार वाले उसका शव लेने गए तो उन्हें भी देने से मना कर दिया गया।

विपक्ष ने रज्जब के शव पर इस तरह सरकारी कब्ज़ा किये जाने की तीव्र भर्त्सना करते हुये कहा कि, 'विपक्ष नहीं, प्रधानमंत्री 'लाश की राजनीति' कर रहे हैं। यह प्रधानमंत्री जैसे देश के उच्च पद पर बैठे व्यक्ति को शोभा नहीं देता। विपक्ष ने कभी लाश की घिनौनी राजनीति करने में विश्वास नहीं किया। सच्चाई यह है कि विपक्ष का ध्यान जैसे ही शहीद रज्जब की दर्दनाक एवं असामयिक मृत्यु की ओर गया, उसने तुरन्त बैठक बुलाई और कुछ ऐसे महत्वपूर्ण फैसले लिए जिससे रज्जब भाई का सम्मान भी हो और अंधी, बहरी, गूँगी सरकार का ध्यान भी देश की गरीब-पिसी हुई जनता की ओर जाए जो आये दिन ट्रकों-बसों इत्यादि के नीचे कुचलकर मरती रहती है। लेकिन प्रधानमंत्री ने राष्ट्र के प्रति अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह न करते हुए सारे मामले को अनावश्यक रूप से राजनीति का रंग दे दिया है। विपक्ष प्रधानमंत्री की घनघोर तानाशाही असंवेदनशील नीति की आलोचना करता है।'

'इसी के साथ हम शहीद रज्जब द्वारा की गयी देश की सेवाओं के प्रति फिर से अपना सम्मान व्यक्त करते हैं। भारत माता को ऐसे लाखों-करो ों सपूतों की ज़रूरत है। तभी उसकी आँखों से अंतिम आँसू पोंछा जा सकेगा। हम मानते हैं कि शहीद रज्जब के राष्ट्र के प्रति योगदान को देखते हुए सरकार जो कर रही है, वह बहुत कम है। ऐसे मौकों पर प्रधानमंत्री को अपना कोष उदारतापूर्वक खोल देना चाहिए था लेकिन उन्होंने ऐसे शोक के मौके पर भी अपनी संवेदनशून्यता तथा अनुदारता का परिचय दिया है। विपक्ष का यह संकल्प था कि वह चंदे द्वारा दस हजार रूपये इकट्ठे करके शहीद रज्ज्ब की विधवा को दे। लेकिन यह जानकर कि प्रधानमंत्री तुरन्त इसका अनुकरण करते हुए रज्जब के परिवार को अधिक धन देने की घोषणा की राजनीति करने लगेंगे, विपक्ष ने अपना यह इरादा त्याग दिया है। हम जिम्मेदार विपक्ष के नाते शहीद रज्जब के मामले में सरकार के साथ कोई प्रतियोगिता नहीं करना चाहते, और प्रधानमंत्री द्वारा शुरू की गई 'लाश की राजनीति' के घिनौने खेल में शामिल होना नहीं चाहते, इसलिए हमने शहीद रज्जब की प्रतिमा की स्थापना का अपना इरादा भी त्याग दिया है। संकट और दुख की इस घ ी में हम कोई भी ऐसा कदम उठाना नहीं चाहते जिससे कि देश का वातावरण दूषित हो। हमने हमेशा देश के व्यापक हित को अपने सामने रखा है। वही हम अब भी कर रहे हैं।'

इसके बाद प्रधानमंत्री का वक्तव्य आया कि, 'यह अच्छी बात है कि हमारे दबाव के बाद विपक्ष ने 'लाश की राजनीति' करने के अपने अशोभनीय कदम पर पुनर्विचार किया है और उसे वापिस ले लिया है। हम इसका स्वागत करते हैं। हमें आशा है कि भविष्य में भी विपक्ष इसी प्रकार जिम्मेदारी की भावना से काम करेगा।'

'विपक्ष ने सारे मामले को इतना राजनीतिक रंग दे दिया है कि कुछ क्षेत्रों में सरकार की इस बात के लिए अनावश्यक रूप से अलोचना की जाने लगी है कि वह भी शहीद रज्जब का सम्मान नहीं कर रही है बल्कि 'लाश की राजनीति' कर रही है। हम इसे नहीं मानते। सरकार ने अपने इरादों को बहुत पहले और बहुत स्पष्ट शब्दों में बता दिया था। फिर भी सरकार किसी अनावश्यक विवाद में फँसना नहीं चाहती। अतः सरकार ने यह निश्चय किया है कि रज्जब से सम्बन्धित सभी कार्यक्रम तथा घोषणाएँ तत्काल प्रभाव से वापिस ले ली जाएँ। आशा है विपक्ष अब आगे इस विवाद को राजनीतिक रंग देने से बाज आएगा।'

'इसी के साथ सरकार ने एक आदेश जारी करके पटरी पर सोने पर रोक लगा दी है ताकि रात को वाहनों के निर्बाध आवागमन में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो। भारतीय दंड संहिता में आवश्यक संशोधन करने के लिए एक अध्यादेश अलग से राष्ट्रपति द्वारा जारी किया जा रहा है जिसके तत्काल प्रभाव से पटरी पर सोने वालों को तीन माह की बामशक्कत कैद और १००००रूपये का जुर्माना या दोनों देने होंगे।'

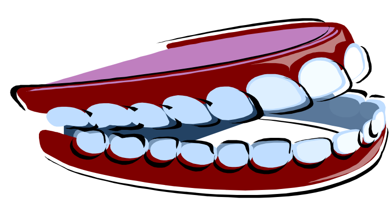

किसने, किसने, किसने?

डा. रामकुमार गुप्त

ठहरे हुए पानी में,
ये, किसने पत्थर फेंका?
फिर, पत्थर पे पत्थर,
पत्थर पे पत्थर,
पत्थर पे पत्थर !
सारा तालाब पत्थरों से भर गया,
सारी मछलियाँ दब गयीं त प कर !!

ये, किसने फेंका धुएँ का गुब्बारा,
शहर के बीचोंबीच?
फिर, धुएँ पे धुआँ,
धुएँ पे धुआँ,
धुएँ पे धुआँ !
सारा शहर धुएँ से भर गया,
सारी बस्तियाँ सोती रहीं सिकु कर !!

ये, किसने उगल दिया,
ज़हर क्षीर-सागर में?
फिर, ज़हर पे ज़हर,
ज़हर पे ज़हर,
ज़हर पे ज़हर !
अब, ज़हर से भर गया है क्षीर-सागर,
सारी धवलता खो चुका है क्षीर-सागर !!

सम्बन्धों का समीकरण

डॉ. इन्द्रा भटनागर

सुरेखा समझ नहीं पाती कि बृजेश के मरते ही उसकी स्वयं की संतान जो कल तक अपनत्व की भावना से जु ी थी, क्यों अजनबी-सी बन गई है।

परायेपन का यह कैसा दर्द है, जिसे वह झेल नहीं पा रही। क्यों अपनी ही कोख में पली, अपने ही रक्त से बनी सन्तान पराई-सी हो जाती है। और एक अपरिचित जो जीवन में पति बन कर आता है, क्यों और कैसे भावात्मकता के स्तर पर आत्मा से इस प्रकार जु जाता है कि मृत्यु के पश्चात् भी उसके दुख-सुख के प्रति चिन्तित और अपनत्व की भावना से भरा रहता है।

बृजेश की मृत्यु के पश्चात् वह एक-एक महीने वीरेन्द्र और सुरेन्द्र के पास तथा पन्द्रह दिन सुनीता के पास रही थी। उसे ऐसा प्रतीत होता रहा जैसे रिश्तों की जीवन्तता मर गई है। सम्बन्धों का समीकरण बदल गया है। और वह अपनी ही संतान के लिए एक निरर्थक बोझ बन गई है।

डेढ़ वर्ष पूर्व की ही तो बात थी, वह और बृजेश कितने सुखी थे। ब ा ल का वीरेन्द्र इंजीनियर बन गया था। उसकी पोस्टिंग बंगलौर में हुई। विवाह के पश्चात् अपनी पत्नी नमिता के साथ वह सुखी जीवन बिता रहा था। छोटा पुत्र सुरेन्द्र डॉक्टर बन चुका था। उसकी पोस्टिंग अलवर हुई। दो वर्ष पूर्व उसका विवाह भी विनीता से हो गया था। सुनीता ने इँग्लिश में एम.ए. किया था तथा विवाह के पश्चात् विनय के साथ अपनी ससुराल में सुखी थी। वह सोचती थी, जिसके माँ-बाप को प्यार करने वाले वीरेन्द्र और सुरेन्द्र जैसे पुत्र हों, नमिता और विनीता के समान आज्ञाकारी, नम्र व सुशील बहुएँ हों, उसे भविष्य की क्या चिन्ता है। उसे क्या पता था कि विधाता उसके इन विचारों पर हँस रहा था।

बृजेश को दुकान के कार्य से मुबंई जाना प ा। वहाँ से लौटे तो उनके चेहरे के पीलेपन तथा निबर्लता को देख कर वह चिन्तित हो गई। उसने डॉक्टर से 'चेक-अप' कराने का बहुत आग्रह किया परन्तु उन्होंने सफ़र की थकान कह कर उसे टाल दिया। तब वह कहाँ जानती थी कि चेहरे पर फैला पीलापन और दुर्बलता उसके हरे-भरे संसार को नष्ट करने वाली काल की छाया थी।

मुबंई से लौटे पन्द्रह दिन ही बीते थे कि बृजेश ने कहा, 'सुरेखा मैंने अपनी वसीयत करने के लिए वकील को बुलाया है।'

सुरेखा ने पूछा, 'वसीयत और वकील की क्या आवश्यकता आ गई?'

'अपनी कोठी, दुकान और बैंक का रूपया सब तुम्हारे नाम करना चाह रहा हूँ। मैं यह सहन नहीं कर सकता कि मेरे बाद आर्थिक दृष्टि से तुम किसी पर निर्भर हो, अथवा आत्म-सम्मान खो कर मानसिक यातना सहन करो।'

'यह सब क्या कह रहे हो? मुबंई से आये हो तभी से इस प्रकार की बातें कर रहे हो। यदि किसी प्रकार की शंका है तो डॉक्टर के पास चलिये। मैं आज ही तार दे कर सुशील को बुला रही हूँ। मुझे नहीं चाहिये कोठी, दुकान या धन।'

'तुम बहुत भोली हो सुरेखा। तुमने संसार का वास्तविक रूप नहीं देखा है। मेरा बचपन अनाथाश्रम में बीता है। मैंने दुनिया को खुली किताब के समान पढ़ा है। समाज ही नहीं, अपने बच्चे भी धन के अभाव में उचित आदर-सम्मान नहीं देते। हाँ, एक बात का ध्यान अवश्य रखना, मेरी वार्षिकी के अवसर पर अनाथाश्रम के बच्चों को अपने हाथ से खाना खिला कर वस्त्र देना। ऐसा हर वर्ष करना, उससे मेरी आत्मा को शांति मिलेगी।'

हर वर्ष बृजेश अनाथाश्रम के बच्चों को भोजन खिला कर वस्त्र बाँटते हैं। सुरेखा जानती है कि उनका बचपन अनाथाश्रम में बीता था, इसी कारण उन्हें अनाथाश्रम से भावात्मक लगाव है।

एक छोटी-सी घटना ने उनकी जीवन-दिशा परिवर्तित कर दी थी। सुरेखा के प ोस में ही अवकाश-प्राप्त मास्टर गिरधारीलाल जी रहते थे। उनके कोई बच्चा था नहीं और पत्नी की मृत्यु हो चुकी थी। एक विधवा बहन गाँव में रहती थीं। वे पेन्शन ले कर अपने घर आ रहे थे। रास्ते में अस्थमा के भीषण आक्रमण के कारण व्याकुल तथा असहाय से स क के किनारे ही बैठ गये। स क पर लोग गुज़र रहे थे परन्तु उनकी सहायता के लिए किसी के पास अवकाश नहीं था। बृजेश वहीं से गुज़र रहे थे। गिरधारीलाल जी की गम्भीर स्थिति देख कर वे उन्हें उनके घर लाये, दवाएँ दीं तथा दो रात्रि रुक कर उनकी सेवा की। गिरधारीलाल जी उनसे इतने प्रभावित हुये कि उन्होंने अनाथाश्रम से उन्हें गोद ले लिया तथा उनके आगे पढ़ने का प्रबन्ध किया। उनकी कुशाग्र बुद्धि देख कर गिरधारीलाल जी उन्हें आगे पढ़ाना चाहते थे परन्तु दसवीं के पश्चात् बृजेश ने आगे पढ़ने के स्थान पर स्वयं अपने पैरों पर ख` होने का निर्णय लिया। गिरधारीलाल जी ने उसे पाँच हजार रुपये दिये थे। बृजेश ने अपने घर के सामने के कमरे में कप` की दुकान खोली थी। भाग्य ने साथ दिया। व्यापार में लाभ हुआ तो मुख्य बाजार में दुकान ले ली। पाँच वर्षों के अथक परिश्रम से उनकी साख जम गई।

सुरेखा के पिता त्रिलोकीनाथ भी शिक्षक थे तथा गिरधारीलाल जी से उनकी प्रगाढ़ मित्रता थी। उनके एक ल का तथा तीन ल कियाँ थीं। ल का सी.ए. करके बहू के साथ मुंबई में बस गया था। दो पुत्रियों की शादी कर दी थी। उसके बाद पत्नी के देहान्त ने तथा धनाभाव के कारण सुरेखा की शादी की असमर्थता तथा सेवानिवृति के समय की निकटता ने उन्हें बिलकुल तो दिया था। पुत्र से सहायता की कोई आशा नहीं थी। निरन्तर चिन्ता तथा तनाव से वे ब्लड-प्रैशर के मरीज़ बन गये थे। गिरधारीलाल जी के सुझाव को स्वीकार कर उन्होंने सुरेखा की शादी बृजेश से कर दी थी। बृजेश से उसे अथाह प्यार प्राप्त हुआ था।

बृजेश का व्यापार बढ़ता गया। उन्हें एक ईमानदार सहायक की आवश्यकता थी। उसी समय गिरधारीलाल जी की बहन की मृत्यु के पश्चात् उनका भांजा सुखराम पत्नी मंगला के साथ रोज़गार की तलाश में वहाँ आया। उस समय गिरधारीलाल जी की स्थिति गम्भीर थी। अच्छे से अच्छे उपचार से भी उनकी हालत नहीं सँभल पा रही थी। मृत्यु से पूर्व गिरधारीलाल जी ने ब` विश्वास के साथ सुखराम की जिम्मेदारी बृजेश को सौंपी। बृजेश ने सुखराम को छोटे भाई के समान स्नेह दिया। वे घर के सदस्यों के समान ही उनके साथ रह रहे थे। सुखराम एक विश्वसनीय, कर्मठ तथा सहृदय युवक प्रमाणित हुआ। सुखराम और मंगला बृजेश तथा सुरेखा का बहुत सम्मान करते थे। उनके कोई बच्चा नहीं हुआ परन्तु उन्होंने अपनी समस्त ममता बृजेश के बच्चों पर उडेल रखी थी। बच्चों के पालन-पोषण में मंगला की महत्वपूर्ण भूमिका थी। घर का उत्तरदायित्व भी बहुत कुछ मंगला ने सँभाल रखा था।

मुंबई में बृजेश को हार्ट-अटैक हुआ था परन्तु उन्होंने घर पर किसी को बताया नहीं था। उन्हें आशंका थी कि सुरेखा घबरा जायेगी। बृजेश के स्वास्थ्य और उनकी बातों से सुरेखा बहुत घबरा गई। उसके आग्रह पर बृजेश को अपना 'चेक-अप' कराना प ा। डॉक्टरों ने दवा के साथ पूर्ण विश्राम करने के लिए कहा। सुरेखा ने सुरेन्द्र को तार दे कर बुलाया। वह ट्रेनिंग पर गया हुआ था। उसके आने से पूर्व ही बृजेश को दूसरी बार हार्ट-अटैक हुआ और सुरेखा का सौभाग्य-सूर्य अस्त हो गया।

बृजेश की मृत्यु को ग्यारहवाँ महीना लग गया। उनकी वार्षिकी के अवसर पर पुत्र, पुत्रवधुएँ, दामाद, ल की, पौत्र, पौत्री, नाती सभी एकत्रित हुये। बृजेश के निर्देशानुसार वार्षिकी के बाद ही उनकी वसीयत सुनाई जानी थी।

इस अवधि में दुकान का कार्य यथावत चलता रहा था। सुखराम प्रतिदिन आय-व्यय का विवरण सुरेखा को देता रहता था।

सुरेखा ने वार्षिकी के अवसर पर अपने बच्चों से बृजेश की अनाथ बच्चों को भोजन कराने तथा वस्त्र प्रदान करने की अन्तिम इच्छा पूर्ण करने की व्यवस्था करने के लिए कहा।

वीरेन्द्र बोला, 'What a silly sentiment?'

नमिता बोली, 'एक भावात्मक दुर्बलता के लिए इतना व्यय करना व्यर्थ है।'

विनीता ने कहा, 'दुकान की आय तो बैंक में जमा हो रही है, खर्चा कैसे होगा?'

सुरेन्द्र बोला, 'भई मेरे पास तो इस समय पैसे हैं नहीं, जो थे वे क्लीनिक और उपकरणों के खरीदने में लग गये।'

सुनीता बोली, 'हमारे व्यापार में तो वैसे ही घाटा चल रहा है।'

बच्चों के विरोध और असहयोग ने सुरेखा की अन्तरात्मा को आहत कर दिया। वह बृजेश की इच्छा की उपेक्षा नहीं कर सकती थी। उसने सुखराम को अपने क` देते हुए सारी व्यवस्था करने के लिए कहा। क` देख कर सुखराम रो प ा, 'नहीं भौजी, मैं क` नहीं लूँगा। बृजेश भइया की इच्छा पूरी करने की व्यवस्था हो जायेगी।'

'नहीं सुखराम, यह समय रोने या सोचने का नहीं है। समय कम है तथा तुम्हें ही सारी व्यवस्था देखनी है।'

वार्षिकी से एक दिन पूर्व सुरेखा अपने पूजा-कक्ष में बैठी थी। पास के कमरे से बच्चों की बातों की आवाज़ें आ रही थीं।

वीरेन्द्र कह रहा था, 'कोठी और दुकान बेच कर जो मेरा हिस्सा आयेगा, मैं तो उससे बँगलौर में ही अपना फ्लैट बनवाऊँगा।'

'विनीता की बहुत इच्छा है मैं तो उससे कार खरीदूँगा, क्यों विनीता?'

'रूपये मिलने से हम भी अपना व्यापार बढ़ा लेंगे।' सुनीता ने कहा।

विनीता ने कहा, 'और माँ, माँ के विषय में तो कुछ सोचा ही नहीं?'

'भई मेरी सास तो बहुत अक्ख और मुँहफट है, उसका माँ से निबाह बहुत कठिन है।'

'जब हिस्सा लोगी तो जिम्मेदारी क्यों नहीं लोगी? चार-चार महीने सबके पास रहेंगी।'

उनकी बातें उसके कानों में पिघलते शीशे के समान प रही थीं। अपने ही बच्चे और उनके स्वर उसे अपरिचित लग रहे थे।

वार्षिकी वाले दिन अनाथ बच्चों को खाना खिला कर तथा वस्त्र वितरित कर वह पूजा-गृह में आई तो बृजेश की फोटो देख कर रुलाई के वेग को नहीं रोक सकी। मंगला ने आकर उसे सँभाला तथा जबर्दस्ती दो घूँट पानी पिलाया। तभी सुखराम ने वकील साहब के आने की सूचना दी।

वह थके कदमों से कक्ष में पहुँची। सभी वहाँ उपस्थित थे तथा वसीयत जानने के लिए उत्सुक हो रहे थे।

बृजेश की वसीयत के अनुसार उनकी समस्त चल-अचल सम्पत्ति की अधिकारिणी सुरेखा थी। उसके जीवन-काल में दुकान उसी प्रकार चलती रहेगी, तथा उसकी आय पर सुरेखा का अधिकार होगा। वह उसे किसी भी प्रकार व्यय करने के लिए स्वतंत्र है। दुकान का कार्य सुखराम सँभालेगा तथा प्रतिदिन आय-व्यय का विवरण सुरेखा को देगा। सुरेखा की मृत्यु के पश्चात् कोठी और दुकान बेच कर जो राशि प्राप्त हो उसमे से इतनी राशि बैंक में जमा करा दी जाये, जिसका ब्याज सुखराम के वेतन के बराबर हो और वह उसे जीवन-पर्यन्त मिलता रहे। यदि उसके बाद मंगला जीवित रहे तो उसे मिलता रहे। उनके बाद वह राशि अनाथालय को दे दी जाये। शेष राशि तथा बैंक में अन्य जमा पैसा वीरेन्द्र, सुरेन्द्र तथा सुनीता को वितरित कर दिया जाये।

कोठी बनने से पूर्व जिस मकान में वे रहते थे तथा जिसे उन्होंने मास्टर गिरधारीलाल जी के बचे प्राविडेन्ट फंड की राशि से खरीदा था, कोठी बिकने के बाद, उस पर सुखराम का अधिकार रहेगा।

वसीयत सुनाने के पश्चात् वकील साहब ने सुरेखा को एक लिफ़ाफा दिया जिसके एक ओर लिखा था 'व्यक्तिगत' तथा दूसरी ओर 'प्रिय सुरेखा को मिले।'

यह वसीयत बच्चों के लिए एक भीषण विस्फोट थी जिसने उनकी योजनाऔं और स्वप्नों को धराशायी कर दिया था।

विनीता ने कहा, 'बाबूज़ी को हम पर विश्वास नहीं था कि हम माँ को ठीक से रखेंगे।'

नमिता बोली, 'हम से तो अधिक बाबू जी को सुखराम चाचा का ध्यान रहा।'

उसके बाद सभी ने बस अथवा ट्रेन से रात को ही जाने का निश्चय कर लिया। उनकी अप्रसन्नता देख कर सुरेखा ने भी रुकने का आग्रह नहीं किया। उसे तो यह भी पता नहीं किसने क्या खाया? कौन अपने साथ मिठाई पूरी ले गया, कौन नहीं? सब कुछ मंगला ने ही सँभाल रखा था। उसी ने सभी को खिला-पिलाकर उनके साथ पूरी, मिठाई बाँध दी थी। एक-एक करके सभी उससे विदा ले कर चले गये थे। सबके जाने के बाद उसने शयन-कक्ष में जाकर लिफ़ाफा खोला तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे फोटो में से बृजेश मुस्कुराता हुआ उसे देख रहा है। पत्र संक्षिप्त था परन्तु प्रत्येक शब्द में अपनत्व और प्यार छिपा था।

'प्रिय सुरेखा,

वार्षिकी के पश्चात् जब तुम यह पत्र पढ़ रही होगी, उस समय की स्थिति की कल्पना कर मैं व्यथित हो रहा हूँ, परन्तु विवश हूँ। इन ग्यारह महीनों में ही तुम संसार के स्वार्थी रूप से परिचित हो गई होगी। मैं जानता हूँ बच्चों को कोठी, दुकान किसी से लगाव नहीं है। मेरे मरते ही वे इन्हें बेच कर राशि आपस में बाँट लेंगे। आश्रित होकर तुम आर्थिक अभाव या मानसिक कष्ट सहन करो, यह मैं सहन नहीं कर सकता।

सुरेखा, अपनी देहरी मत छो ना। इसी में तुम्हारा आत्म-सम्मान सुरक्षित है। हमारा साथ समाप्त हो गया, अब जीवन का सफ़र तुम्हें अकेले ही तय करना है। उसे धीरज तथा आत्म-सम्मान के साथ पार करना। मैं भावात्मक रूप से, बीती स्मृतियों के माध्यम से सदैव तुमसे जु ा रहूँगा। तुमने जीवन में जितना प्यार दिया, उसने मुझ अनाथ व्यक्ति की तृषित आत्मा को तृप्त कर दिया। मेरी शुभकामनाएँ तुम्हारे साथ हैं। अच्छा विदा।

सदैव तुम्हारा,

बृजेश'

पत्र हाथ में लिये न जाने कब तक वह संज्ञा-शून्य-सी बैठी रही। उसके मस्तिष्क में एक ही प्रश्न घूम रहा था - क्यों? आख़िर क्यों? समय के साथ-साथ अपने बच्चे पराये-से बन जाते हैं। एक दूरी आ जाती है जिसमे अपनेपन का रस सूख जाता है और क्यों एक अपरिचित जीवन में आता है तो दूरियाँ सिमटती जाती हैं, अपनेपन और प्रेम की रसधारा प्रवाहित होने लगती है।

ग़ज़ल

अक्स लखनवी

ज़ख़्म अपने अब सजाना चाहता हूँ
दर्द तुझको गुनगुनाना चाहता हूँ।

अर्श[1] तुझको ये बताना चाहता हूँ
सर तिरा मैं अब झुकाना चाहता हूँ।

नींद मैं तेरी उ ाना चाहता हूँ
आँख से काजल चुराना चाहता हूँ।

तेरी खुशियों के लिये पलकों पे तेरी
अश्क़ बन कर झिलमिलाना चाहता हूँ।

बात जो जाती रही हाथों से मेरे
मुज़्तरब[2] सा तिलमिलाना चाहता हूँ।

आँख से आँसू तुम्हारे पोंछ कर अब
आओ तुमको गुदगुदाना चाहता हूँ।

ज़िन्दगी के सब मसाइल[3] भूल कर 'अक्स'
फूल सा अब खिलखिलाना चाहता हूँ।

ज़िन्दगी से अब नहीं कोई तवक़्क़ो[4]
मौत लेकिन शायराना चाहता हूँ।

---

[1] आकाश
[2] बेचैन
[3] समस्याएँ
[4] उम्मीद

कलम के धनी प्रेमचन्द

सुभाषिणी खेतरपाल

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है तो प्रेमचंद का साहित्य इसका प्रमाण है। उनका रचना संसार यथार्थ के ठोस धरातल पर टिका है। अपनी कालजयी रचनाओं के कारण प्रेमचन्द आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने अपने समय में थे। उनकी रचनाएँ सामाजिक समस्याओं की प्रतिध्वनि हैं। राजेन्द्र यादव के अनुसार प्रेमचंद की कहानियाँ ज़िन्दगी की कहानियाँ हैं। वे एक भुक्तभोगी कलाकार थे। अपनी निज़ी ज़िन्दगी में स्वयं उन्होंने गरीबी और संघर्षों को झेला। उनका भाव-बोध रिश्ते-नातों के माध्यम से कहानी बन कर निःसृत हुआ। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों के कथानक, पात्र और भाषा तत्कालीन समाज से ही लिए हैं। उनका उर्दू और हिन्दी भाषा पर समान अधिकार था।

मानव मन, ग्रमीण समाज, पारिवारिक रिश्ते, पूँजीपतियों और जमींदारों द्वारा किसानों का शोषण, धर्म के नाम पर जनता का शोषण, दहेज प्रथा और अनमेल विवाह जैसी धार्मिक कुरीतियाँ, स्त्रियों की आभूषणप्रियता, आर्थिक विषमताएँ तथा हीरा मोती जैसे मूक पशुओं की वेदना जैसे अनछुए विषयों को उन्होंने अपनी कहानियों का विषय बनाया।

उनकी कहानी कहने की कला अनोखी और रोचक है। उन्होंने न तो अतीत के गौरव का गुणगान किया ना ही सुनहरे भविष्य के सपने दिखाए। अपनी रचनाओं में प्रेमचन्द तत्कालीन सामयिक समस्याओं के चक्रव्यूह को भेदने में प्रतिबद्ध रहे। प्रेमचन्द का मानना था कि साहित्य वही है जो जीवन के अनुभवों की सच्चाई को अभिव्यक्त कर सके। उनसे पहले केवल मनोरंजन के लिए ही लिखा गया। उन्होंने पाठक का परिचय वास्तविक यथार्थ से कराया जिसने समाज की आँखें खोल दीं।

उनकी कहानियाँ मानसरोवर के कई भागों में संकलित हैं। उनकी कहानियाँ हमें अपने घर की कथाएँ लगती हैं और पात्र हमारे आस-पास के परिवेश से लिये गये लगते हैं। विद्यार्थी जीवन में पढ़ी उनकी कुछ कहानियों के कथानक आज भी मेरे मानस में जीवन्त हैं। कुछ कथानक इस प्रकार हैं :

ब ा भाई छोटे को डाँट रहा है। 'तुम पढ़ते-लिखते नहीं हो। सारा दिन खेलने में व्यस्त रहते हो। भरी दोपहर में पतंगें उ ाने के अतिरिक्त तुम्हें कोई काम नहीं। मोहल्ले के ल कों के साथ पतंगें लूटते फिरते हो। तुम्हें पढ़ाई में ध्यान लगाना चाहिए।' आदि-आदि। छोटा भाई सिर नीचा किये भाई की डाँट सुन रहा है। तभी आकाश में ऊँचे एक पतंग की डोर टूटती है। सभी इस पतंग को लूटने लपकते हैं। भाई साहब की जैसे ही नीचे गिरती हुई टूटी हुई पतंग पर नज़र प ती है, वे लपक कर उसे अपने हाथ में ले लेते हैं। सारे ल के देखते रह जाते हैं।

'प्रायश्चित' कहानी का कथानक भी अनूठा है। दुल्हन घर में नई ब्याह कर आई है। सास ने घर की चाभियाँ बहू को सौंप दी हैं। बहू नित नये व्यंजन बनाती है परन्तु घर की बिल्ली नज़र बचाकर किसी न किसी तरह से घर में घुस जाती है। कभी दूध पी जाती है तो कभी पतीला गिरा जाती है। बहू उससे बहुत परेशान है। एक दिन बहू ने ब ेचाव से खीर बनाई। खीर को ठंडा होने के लिए रसोई का दरवाज़ा बन्द कर बाहर आ गई। थो ी देर बाद उसे बर्तन गिरने की आवाज़ आई। बहू रसोई घर की ओर दौ ी, तभी रसोई में से निकलती बिल्ली पर उसकी नज़र प ी। बहू को लगा कि आज तो बिल्ली ने उसकी मेहनत पर पानी फेर दिया। उसे बहुत गुस्सा आता है। पास ही प ेलक ी के पटरे को उठा कर वह बिल्ली पर दे मारती है। बिल्ली वहीं ढेर हो जाती है। जब काफी समय तक बिल्ली प ी रहती है तो घर के सदस्यों को लगता है कि बिल्ली मर गई। बिल्ली का मरना अपशकुन माना जाता है। घर में खलबली मच जाती है। पण्डित जी को बुलाया जाता है। पण्डित जी पश्चाताप का विधान बताते हैं। पूजा करानी होगी। ब्राह्मणों को भोजन कराना होगा। बिल्ली के भार की ही

सोने की बिल्ली दान करनी होगी। पण्डित जी पूजा-सामग्री की लम्बी-चौ ी सूची थमा देते हैं। सारी व्यवस्था की जा रही है। आकस्मिक इतना ब ा खर्चा आन प ा है। पर उसके बिना चारा नहीं। जैसे-तैसे पूजा की सारी तैयारी की गई। तभी महरी हाँफती हुई आती है और बताती है कि बिल्ली भाग गई।

'ईदगाह' कहानी मानवीय रिश्तों को उजागर करती है। दादी और पोता एक-दूसरे की जीवन रेखा हैं। ल के के माता-पिता गरीबी और बीमारी की भेंट चढ़ गये हैं। दादी के अतिरिक्त ल के का और कोई नहीं। दोनों का किसी तरह गुज़र-बसर चल रहा है। उनकी आय का कोई साधन नहीं। दादी बूढ़ी है फिर भी पोते के लिए किसी तरह लक यों जला कर खाना बना लेती है। ईद का त्योहार आया है। सभी बच्चे मेले में जाने के लिए उत्साहित हैं। दादी भी अपने पोते के लिए कुछ पैसों का जुगा कर देती है। ल का दूसरे बच्चों के साथ ईद का मेला देखने जाता है। मिठाइयों और खिलौनों की दुकानें सजी हैं। झूले लगे हैं। बच्चा मिठाई की दुकान देखता है तो उसका मन करता है जलेबी लेकर खा ले। परन्तु कुछ सोच कर स्वयं को रोक लेता है। खिलौने देख कर उसका उन्हें खरीदने को मन करता है, पर खरीदता नहीं। झूले पर बैठने का मन करता है पर पैसे व्यर्थ नहीं गँवाना चाहता। दूसरे बच्चे मिठाइयों का आनन्द ले रहे हैं। खिलौने खरीद रहे हैं। मेले में घूमते-घूमते बच्चे की नज़र एक जगह प ती है जहाँ एक व्यक्ति चिमटे बेच रहा है। उसे देखते ही बच्चे की आँखों में चमक आती है। सहसा एक विचार कौंधता है। आग पर फुल्के सेंकते दादी का हाथ जल जाता है, क्यों न दादी के लिए मैं रोटी सेंकने के लिए एक चिमटा ले लूँ। और वह सब कुछ भूल कर उन पैसों से दादी के लिए चिमटा खरीद कर खुशी-खुशी घर लौट प ता है।

हर कहानी का अंत पाठक को सोचने पर मज़बूर करता है। उनकी कहानियाँ जीवन से सरोकार रखने वाली हैं। इसीलिए मन को कहीं गहरे छू जाती हैं। कहानियों का कथा-शिल्प भी मौलिक है। प्रेमचन्द की रचनाओं में कोरी कल्पना और निरर्थक भावुकता के लिए कोई स्थान नहीं। उनकी कथाओं का ताना-बाना संघर्ष की पी ा, गरीबी की वेदना, कुण्ठा और त्रासदी तथा अनुभव के ताप से बुना गया है। उनकी संप्रेषणीयता अनूठी है। किसी भी साहित्य-प्रेमी की यात्रा प्रेमचंद की रचनाओं को पढ़े बिना पूरी नहीं होती। वे तो हिन्दी साहित्य के मील के पत्थर के रूप में स्थापित हैं। आने वाली पीढ़ियाँ उनकी रचनाओं का रसास्वादन करने के साथ-साथ अतीत के साथ सम्पर्क भी कायम रख सकेंगी।

साहित्य परिवर्तन और सुधार का माध्यम है। राष्ट्रवादी होने के नाते प्रेमचंद ने साहित्य में वही काम किया जो गाँधी जी ने राजनीति में किया। हिन्दू-मुसलिम एकता, समाज सुधार व ग्राम सुधार, अछूत्तोद्धार तथा स्वाधीनता की लालसा आदि। प्रेमा, वरदान प्रतिज्ञा, सेवासदन, निर्मला, गबन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि और गोदान आदि उपन्यास लिख कर प्रेमचन्द ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। रोज़मर्रा के पात्रों के साधारण जीवन पर आधारित उनकी कहानियों और उपन्यासों की आज उत्कृष्ट साहित्य में गणना होती है।

वसुधा-कुटुम्ब

अक्षय गोजा

जितना समझता हूँ खुद को
उलझता जाता हूँ।
जब देखता हूँ खुद में
नये आयाम, नये क्षितिज, नई दिशाएँ
देखता रह जाता हूँ।
जुटा रहता हूँ
अपना अधिकाधिक परिचय पाने में।

कितनी गहन, कितनी लम्बी, कितनी ऊँची होती है
खुद को समझने की यात्रा।
करनी होती है हर मानव को
अधिकतर नहीं करते।

कोई भी खुद को
समझ लेने पर
समझ जाता है हर मानव को।
तब नहीं रह पाता भेद
देश, धर्म, जाति, वर्ग का।
ऐसे ही मानवों से बनेगी
यह वसुधा एक कुटुम्ब।

छल

बनाफ़र चन्द्र

शाम ढलते ही जल्दी से भोजन-पानी करके गाँव के बूढ़े, बच्चे, जवान चौपाल या दालान में केशो काका की प्रतीक्षा करने लगते। जब तक वो भोजन कर रहे होते लोग कई बार उनके नाम की हाँक लगा चुके होते। कथा सुनने वालों के कारण चैन से न वो भोजन कर पाते, न कभी नींद भर सो पाते। खेती-किसानी के दिनों में उनके कुछ खेत अनबोये और अनपटे रह जाते और वो कथा कहने में मस्त रहते।

कभी उनको अपने बाबूजी की डाँट-फटकार सुनने को मिलती, कभी ब े भइया की। कभी माँ की क वी बोली सुनने को मिलती, कभी पत्नी की।

'काम-धाम छो कर जब देखो तब किस्सा-कहानी कहता रहता है, न घर की चिन्ता न पेट की। न पत्नी की परवाह, न बाल-बच्चों की। पता नही इस उम्र में ही इतने किस्से-कहानी कहाँ से सीख लिया है। भगवान जाने इसके दिन कैसे कटेंगे' माँ गुस्सा होतीं तो कुछ इसी तरह ब ब ाने लगतीं।

पत्नी की झि की कुछ अलग तरह की होती। आधी रात तक वह प्रतीक्षा करती। उसके आने की राह देखती फिर थक-हार कर सो जाती। सुबह होते ही केशो काका को देख कर बुदबदाने लगती 'ये किस्से-कहानियाँ मेरी सौत हैं। ये हा -माँस की होतीं तो उन सबको चूल्हे में झोंक देती।' केशो काका पत्नी की बुदबुदाहट सुनते और धीरे से पत्नी की तरफ देख कर मुस्कुराते और जल्दी-जल्दी आँगन से बाहर हो जाते।

केशो काका अपनी कथाओं की तरह कई हिस्सों में बँटे हुए थे। कुछ खेत में, कुछ खलिहान में, कुछ हित-नातों में और कुछ गाँव के लोगों में। पत्नी और घर के हिस्से में वो बहुत कम आते। इसलिए घर और पत्नी की उलाहना के शिकार हमेशा होते रहते।

जल्दी-जल्दी वो रात का भोजन करते। एक लम्बी डकार लेते हुए दालान पर आते और प्रतीक्षा करते श्रोताओं के बीच पालथी मार कर बैठ जाते। पहले चिलम या बीडी का कश खींचते। फिर खैनी खाते। कथा कहने के पहले की उनकी यह तैयारी होती। इसके बाद वो शुरू होते तो पूरी रात बीत जाती, लेकिन उनकी कथा खत्म नहीं होती। श्रोता तीन-चार घंटे तक तन्मय होकर सुनते इसके बाद धीरे-धीरे ऊँघने लगते। फिर एक-एक करके सो जाते। नौजवान जिनके शादी-गौना हो गये होते धीरे से उठ कर अपनी मेहर के पास सरक लेते।

केशो काका का साथ बूढ़े श्रोता दरे रात तक देते। कथा भी सुनते और हूँका भी देते, आधी रात के बाद उनकी भी नाक बजने लगती। सुबह जब उनकी नींद खुलती तो देखते कि केशो काका अकेले ही कथा कहे जा रहे हैं। कथा कहने वाले भी वही होते और सुनने वाले भी वही। कथा कहने की धुन में वो भूल जाते कि सुनने वाले सब सो गये या उठ कर चले गये।

केशो काका राजा-रानी और राजकुमारों की कथा ही अधिक कहते। परियों की कथा भूल कर भी वो नहीं कहते। पता नहीं परियों से उन्हें क्यों चिढ़ थी। जब कि उनकी पत्नी परियों की तरह खूबसूरत और गोरी थीं। जब वो राजे-महराजे और राजकुमारों के सिंहासन से नीचे उतरते तो अहीर-ग ि यों की कथा लेकर बैठ जाते। उनकी कथाओं में सफेद घो े होते, हाथी होते, अभेद किले होते और एक बुढ़िया कुटनी होती जो राजाओं को ल ाती रहती और दूर बैठ कर मज़ा लेती। हाथी राजाओं के लिए होते और सफेद घो े राजकुमारों के लिए। अहीर-ग ि ये की कथाओं में अहीर होते, ग ि ये होते, गाय-भैसें और ढेर सारी भे ें होतीं, नदी-नाले और जंगल पहा होते। जंगल में छलाँग लगाती हिरणें होतीं, बाघ शेर होते।

केशो काका पहले कथा गढ़ते, फिर उसे जीते, उसके बाद कहते। एक कथा गढ़ने में उनको महीनों लग जाते। कथा गढ़ने की प्रक्रिया से जब वो गुज़र रहे होते उस वक्त वो मौन धारण कर लेते। बहुत कम बोलते। सिर्फ़ हूँ-हाँ करके काम चला लेते। तब लोग समझ जाते कि वो कोई नई कथा गढ़ रहे हैं। उनको छे ना ठीक नहीं। कथा पूरी होते ही वो चहकने लगते जैसे अलादीन का चिराग मिल गया हो। फिर महीने भर उस कथा को कहते रहते। कभी दालान में तो कभी चौपाल में उनकी बैठक जमी रहती। नई कथा को लोग तन्मय होकर सुनते और वाह-वाही से उनकी झोली भर देते।

गर्मी के मौसम में गाँव, चौपाल और दालान से दूर खलिहान में गेहूँ के डंठल पर बैठ कर वो कथा कहते। इससे गेहूँ और खलिहान की रखवाली भी हो जाती और मन माफ़िक कथा भी। कथा कहते-कहते मस्ती में आते तो गाने और नाचने भी लगते। गीत की तरह वो कथा भी गाते। कथा के बीच-बीच में कुछ इस तरह की पंक्तियाँ जो देते कि आधी कथा गीत बन जाती। सधे हुये स्वर में गाने लगते तो लोग नींद से उठ कर खलिहान में चले आते। औरतें किवा खोल कर दरवाज़े पर आकर ख ी हो जातीं और उनकी गीत कथा तब तक सुनती रहतीं जब तक कि वो कथा गाना बन्द नहीं कर देते।

केशो काका छोटे गृहस्थ थे। एक मझोले किसान का बेटा। उनके पिता का नाम घुरहू था। वो सुबह उठते, बैलों को सानी-पानी देते, फिर फ़ारिग होने के लिये नहर की तरफ़ निकल जाते। जब तक नितकर्म से फ़ारिग होते, कुला-मुखारी करते तब तक बैल सानी खा कर खेत जाने के लिये तैयार हो जाते। जल्दी-जल्दी वो दही-चू ा या फिर दही-रोटी खाते, कंधे पर हाल उठाते और बैलों की टिटकारी देते हुए खेत पहुँच जाते। वो हल जोतते रहते और मस्ती में कोई गीत गुनगुनाते रहते। बगल के खेत का कोई हलवाहा कहता 'केशो काका , थो ा गला खोल के हो जाये। मन ही मन का बुदबुदात हव मर्दवा।' फिर वो तो ऐसा स्वर साधते कि सिवान गूँज उठता।

इस पूरी दिनचर्या में सबसे ताज्जुब की बात यह होती कि रात भर वो कथा कहते और दिन भर हल जोतते। इसके बावज़ूद उनकी आँख में न नींद होती न हाथ-पैरों में थकान। न उन पर ठंड का असर होता न गर्मी बरसात का। पता नहीं वो किस मिट्टी के बने थे।

वो तीन भाई थे। ब े भाई हाई स्कूल के मास्टर और छोटा अनपढ़-गँवार और सुम था। उसके लिये गाय-भैंस, भे -बकरी सब बराबर। हाथ-पैथ मोटे होने के साथ-साथ उसका दिमाग भी मोटा था। काम-धाम में गोबर और ल ने-भि ने में शेर खाँ। ले-देकर खेत खलिहान का सारा भार केशो काका के कंधों पर। इसके बावज़ूद वो मस्त। केशो काका भी अनपढ़ थे। पर गँवार और सुम नहीं थे।

उनके एक मामा भी थे जो शकुनि मामा की तरह तीनों भाइयों को आपस में भि ाते रहते। कभी-कभी गाँव वालों से भी ल ा-भि ा देते। जन्म से लेकर मृत्यु तक वो केशो काका के घर विराजमान रहे और शकुनि की भूमिका निभाते रहे। गाँव के लोग उनको माहिल मामा कहते। केशो काका पर उनकी नज़र हर वक्त चढ़ी रहती। उनमें सौ गलती वो रोज़ निकालते और उन्हें जलील करते। केशो काका को यही बात खल जाती। वो त क जाते। रिश्ते-नाते तो कर अपने पर उतर आते।

'कम खाओ, ग़म खाओ, इसके बावज़ूद जब देखो डंडा लिये रहते हैं। तुम मामा हो या कसाई?' केशो काका त क कर कहते और सीधा गाँव से बाहर जाने वाली पगडंडी पक लेते। गुस्से में दिन-भर भूखे-प्यासे इधर-उधर रहते और शाम ढलते ही दालान या चौपाल में लौट आते। फिर बिना खाये-पिये रात भर कथा कहते रहते। कथा कहते-कहते उनका गुस्सा शांत हो जाता। मामा या गाँव के लोग उनकी इस आदत से परिचित थे। इसलिये न कोई उन्हें मनाने जाता न लौटाने। उन्हें यह पता था कि वो कितना भी गुस्सा या नाराज़ क्यों न हों जायें, गाँव छो कर जा ही नहीं सकते। जितना उन्हें अपनी कथाओं और जीवन से मोह है, उससे कहीं ज्यादा गाँव और गाँव की मिट्टी से। गाँव की मिट्टी से कभी दग़ा नहीं कर सकते।

जवानी के दिनों में केशो काका ससुराल से लौट रहे थे। रास्ते में उनके पीछे एक जिन्न लग गया। वह कथा कहने के लिए जिद्द पक ने लगा। केशो काका ने सोचा कि मेरे जैसा वह भी कोई राहगीर है। कथा कहने से उसका भी रास्ता कट जायेगा और मेरा भी। दोनों पैदल थे और सफ़र लम्बा था। लम्बे सफ़र में कोई बात-चीत करने वाला मिल जाता है तो अकेलापन तो कम होता ही है, रास्ता भी कट जाता है। और कुछ राहत भी महसूस होती है। यही सोच कर वो शुरू हो गये।

वो कथा कहते जा रहे थे और वह जिन्न (प्रेत) हूँका भरता जा रहा था। दोनों नहर के किनारे-किनारे चल रहे थे। जिन्न को मालूम था कि केशो काका हा -माँस का जीवित आदमी है। पर केशो काका को नहीं मालूम था कि वह जिन्न है। वह आचरण भी आदमी की तरह करता था, और हरकतें भी। पर केशो काका को उसकी आवाज़ पर शक था, क्योंकि उसकी आवाज़ आदमी की आवाज़ से थो ी भिन्न थी। वह बोलता तो लगता कि कोई गों. . . .गों. . . .कर रहा है और आस-पास ढेर सारी मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। बोलने में वह ल ख ाता भी था।

उनका शक यकीन में उस वक्त बदल गया जब अपने गाँव के करीब आते ही उनको तम्बाकू खाने की तीव्र इच्छा हुई। वो थैली से तम्बाकू-चूना निकाल कर हथेली पर मलने लगे। जब तम्बाकू तैयार हुआ तो वह जिन्न बोल प ा 'थो ा मुझे भी चाहिये, मैं भी खाता हूँ।' केशो काका ने उसके चेहरे को पहले ध्यान से देखा फिर हथेली से चुटकी में तम्बाकू निकाल कर देने लगे तो वह फिर बोल प ा 'मैं तम्बाकू तुम्हारे हाथ से नहीं लूँगा। मेरे हिस्से का ज़मीन पर गिरा दो।' इसी बात पर उनका शक यकीन में बदल गया।

गाँव या देहात के लोगों की ऐसी मान्यता है कि कोई भी जिन्न या प्रेत तम्बाकू या बी ी किसी आदमी के हाथ से ले कर नहीं खाता-पीता। वह ज़मीन पर गिरवा या फिकवा देता है। सिर्फ़ उसका गंध भर लेता है। क्योंकि वह शरीर तो धारण कर लेता है पर वह शरीर उसका अपना नहीं होता। सिर्फ़ उसके पास आत्मा होती है जो भटकती रहती है और कई-कई रूप धारण करती रहती है। बहरहाल जो भी हो, केशो काका के हाथ से उसने तम्बाकू नहीं लिया। चुटकी की तम्बाकू उनको ज़मीन पर गिरानी प ी। तम्बाकू ज़मीन पर गिरते ही यह कहते हुए वह हवा (अदृश्य) हो गया कि 'दोस्त तुमसे फिर मुलाकात होगी। कथा बहुत अच्छा कह लेते हो।'

उसके अदृश्य होते ही केशो काका का पूरा शरीर झनझना गया। उनको लगा कि उनके शरीर में न खून है न जान। कुछ देर तक काठ की तरह नहर के किनारे ख े रहे। न उनसे हिलते बना न डुलते। जब चेतना लौटी तो वो जल्दी-जल्दी घर की तरफ़ चल प े।

उनके नहीं होने से गाँव के लोग बोर हो रहे थे। मनहूसियत महसूस कर रहे थे। जब से ससुराल गये थे चौपाल, दालान सूने हो गये थे। वहाँ आदमी के रहते हुये भी लगता कि कोई नहीं है। उनके आने की बाट रोज़ देखी जा रही थी। उन पर नज़र प ते ही गाँव के चेहरे पर चमक आ गई। लोग खुश हो गये। उनके आने की खबर मिनटों में गाँव भर में फैल गई कि केशो काका आ गये हैं। आज चौपाल में बैठक जमेगी और रात भर कथा होगी।

गांव खुश, गाँव के लोग और श्रोता खुश थे। पर केशो काका उदास थे। जिन्न की कही हुई बात उनके कानों में अभी भी गूँज रही थी। उनके भीतर जिन्न की दहशत भर गई थी। रह-रहकर उनको लगता कि वह उनके सामने से अभी-अभी गुज़रा है। वो यह सोच कर ही भय खा जाते कि पता नहीं दोबारा वह किस रूप में मिलेगा। उसका रूख क्या होगा? उसकी शक्ल-सूरत कैसी होगी, सहज या डरावनी?

उनका दिन बहुत बेचैनी से बीता। शाम को जल्दी खाना खाकर दालान में आ गये। एक मन हुआ कि आज की रात पत्नी के साथ बिताएँ। हफ्ते बाद लौटे हैं, पत्नी क्या कहेगी? उनके मन में दूसरा विचार आया कि लोगों के बीच ही आज की रात बिताना ठीक होगा। जिन्न का क्या भरोसा, अकेला पाकर वहाँ आ धमके।

उनके आने के पहले ही दालान भर गया था। लोग उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। हफ्ते भर बाद उन्हें कथा सुनने को मिल रही थी। लेकिन उन्हें क्या पता कि रास्ते में केशो काका के साथ क्या घटा है। वो क्यों अशांत, बेचैन और उदास हैं।

केशो काका आते ही लोगों के बीच तख़्त पर बैठ गये और शुरू हो गये। अपने मन की पी ा, बेचैनी और व्यथा किसी से नहीं कही। लेकिन थो ी देर तक कथा कहने के बाद जिन्न की कही हुई बात और उसकी भिनभिनाती आवाज़ कानों में गूँजने लगी। उनकी आवाज़ ल ख ा कर टूट गई और वो कहीं खो गये। जब श्रोता की आवाज़ उन तक पहुँची कि 'क्या हुआ केशो काका, आप चुप क्यों हो गये?' तो उनकी चेतना लौटी। और बदन झा कर फिर कथा कहने लगे।

वो जब तक कथा कहते रहे, उनकी आवाज़ ल ख ाती और टूटती रही। और वो कहीं खोते रहे। एक भावी आशंका बार-बार उनको दबोचती और कचोटती रही। ज़मीन से आकाश और आकाश से ज़मीन पर उठाती और पटकती रही। लोगों को लगा कि आज उनकी तबियत ठीक नहीं है इसलिए ढंग से कथा नहीं कह पा रहे हैं। कुछ हम-उम्र लोगों ने पूछा भी 'केशो भाई, आज क्या हो गया है आपको? कोई दुख-तकलीफ है?' लेकिन उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया तो यह कहते हुए लोग उठ ख े हुए कि 'आप घर जाइये। हफ्ते भर बाद लौटे हैं। घरवाली आपकी राह देख रही होगी। कल सुन लेंगे।'

थो ी देर में ही दालान खाली हो गया। मन मारकर पत्नी के पास वो लौट आये। कथा अधूरी छो कर भरी महफ़िल से उठ कर पत्नी के पास आने की यह उनके जीवन की पहली घटना थी। वो दुखी और खिन्न थे। भयभीत भी थे। लेकिन जिन्न वाली बात किसी को बताना नहीं चाह रहे थे। पत्नी को भी नहीं। क्योंकि किसी को बताने से ख़तरा होने का डर था। गाँव में इसके पहले इस तरह की कई घटनाएँ घट चुकीं थीं। कई लोग जान से हाथ धो बैठे थे तो कई लोग पागल हो गये थे। लोगों का कहना था कि प्रेत ने उनको मार डाला था, माथा गरम कर दिया। जिन्न या प्रेत साये की तरह पीछे लगे रहते हैं और अपने बारे में सारी बातें सुनते रहते हैं। मौका पाते ही दबोच लेते हैं।

दीये की मद्धिम रोशनी में बहुत देर तक पत्नी के साथ वो बतियाते रहे। सास-ससुर और साली-सलहज के हाल-चाल सुनाते रहे। इस बीच पत्नी यह भी नोट करती रही कि उनके चेहरे पर भय व्याप्त है और उनकी आवाज़ ल ख ा कर टूट जाती है। और वो कहीं खो जाते हैं।

'आज आप इतना भयभीत और सहमें हुये क्यों हैं? दालान में किसी से कहा-सुनी हो गई?' आशंकित होकर पत्नी ने पूछा।

'दरअसल लम्बा सफ़र तय करके आया हूँ। थक गया हूँ। इसलिए ऐसा हो रहा है। मैं क्यों डरूँगा? अब तुम सो जाओ, रात काफी बीत चुकी है। सुबह खेत पर भी जाना है।' उन्होंने पत्नी से कहा और फूँक मार कर दीया बुझा दिया।

थो ी देर में पत्नी की नाक बजने लगी। पर उनको नींद नहीं आई। वो सोने के लिए आँख बंद करते तो बह जिन्न सामने आकर ख ा हो जाता और उसकी भिनभिनाती आवाज़ कानों में गूँजने लगती। ह ब ाकर वो आँख खोल देते और अँधेरे में इधर-उधर देखने लगते। रात के अंतिम प्रहर में ब ी मुश्किल से उनको नींद आई। नींद में उनको लगा कि वह जिन्न उनकी छाती पर आकर बैठ गया है और उनका गला दबा रहा है। गों . . . गों . . . की आवाज़ के साथ उनकी नींद खुल गई। उनकी छाती पर पत्नी का हाथ था। पत्नी उनसे चिपक कर सो रही थी। ह ब ाकर वो उठ बैठे। उनको लगा, यह हाथ पत्नी का नहीं जिन्न का है। उनकी ह ब हट से पत्नी भी उठ बैठीं और बोलीं - 'जरूर कोई बात है। तुम्हें नींद क्यों नहीं आ रही? मेरी कसम, मुझे बताओ तुम।'

'ऐसी कोई बात नहीं है, सुबह हो गई है। कौवे बोलने लगे हैं इसलिए नींद खुल गई है। तुम सोओ, मुझे बैलों को सानी-पानी देना है।' उन्होंने कहा और उठ कर दालान पर आ गये।

महीनों केशो काका शंका-आशंका, दहशत और भय में जीते रहे। उनकी आवाज़ ल ख ाती और टूटती रही। नींद में चौंकते और अँधेरे में भय खाते रहे। पत्नी और लोगों से झूठ बोलते रहे। लेकिन वह जिन्न दोबारा उनको नहीं दिखा, न मिला। और न कोई नुकसान पहुँचाया। इतने दिनों और महीनों भय का भूत उनका पीछा करता रहा।

जब उनको यह विश्वास हो गया कि अभी तक वो भ्रम और दहशत में जीते रहे हैं तो अपनी नादानी और अपने आप पर ठठाकर हँस प े। चौपाल में उस रोज़ ऐसी कथा सुनाई कि लोग वाह-वाह कर उठे।

केशो काका की उम्र अब तक पचास साल की हो गई थी। पर अभी तक वो सिर्फ़ एक औलाद पैदा कर पाये थे। वह औलाद सोलह-सत्रह साल का ल का था। जबकि उनके छोटे-ब` भाइयों की कई-कई औलादें थीं। गाँव के लोग उनसे पूछते कि 'केशो भाई, आपने सिर्फ़ एक ही औलाद क्यों पैदा की जबकि आपके कथा-नायकों के कई-कई राजकुमार होते हैं। उनकी कई-कई रानियाँ और पटरानियाँ होती हैं। औलाद पैदा करने में इतनी कंजूसी क्यों?'

वो सीना तान कर जवाब देते 'शेर एक ही औलाद पैदा करता है। दस तो भे -बकरी जनती है।'

'एक आँख कोई आँख होती है, क्या पता कब फूट जाये' लोगों की इस बात पर केशो काका ठठाकर हँस प ते और हँसते हुए कहते 'जब फूट जायेगी तब देखा जायेगा। इसकी चिन्ता अभी से क्यों करें?' वो अपने बेटे से बहुत प्यार करते, मेला-बाजार जाते तो साथ ले जाते। वह जो कुछ माँगता खरीद कर दे देते और उसका गोरा गाल चूम लेते। फिर पूछते और कुछ?

उनका बेटा रंग-रूप में उन्हीं की तरह था, लेकिन थो ा बावला और कम अक्ली था। कोई भी बात बहुत देर से समझ आती उसे। केशो काका जितना अधिक बोलते उतना ही वह कम बोलता। उसे पढ़ने के लिए स्कूल भेजते तो वह हाथ में डंडा लेकर भैंस चराने चला जाता। यहाँ आकर थो ी देर के लिए वो ग़मगीन हो जाते और कुछ सोचने लगते। फिर उनको लगता कि जो भी है ठीक है, आखिर औलाद तो है। न की जगह पर हाँ तो है। आज न तो कल ससुरे को अक्ल आ जायेगी। शरीर में हड्डी है तो माँस चढ़ने में कितनी देर लगती है। इसी तरह की बातें अपने बेटे के बारे में जब-तब वो सोचते रहते।

उनक ब` भाई जो मास्टर थे, काफ़ी चालाक और तेज़-तर्राट थे। उनके हिस्से का बहुत कुछ वो हज़म कर जाते और केशो काका को पता भी नहीं चल पाता। गाँव के लोग उनसे कहते कि केशो काका आप छले गये। तब उनका मुँह खुला का खुला रह जाता। उनको गुस्सा तो आता, पर अपने ब` भाई से कुछ कह नहीं पाते, लिहाज़ कर जाते। अभी तक छोटे-ब` का वो लिहाज़ करते आये थे। इसी लिहाज़ में उनका बहुत ब ा नुकसान हो गया। नुकसान भी ऐसा हुआ कि ज़िन्दगी भर वो भरपाई नहीं कर पाये और उसी ग़म में कथा कहना भूल गये।

एक रोज़ दो घंटे भर की बीमारी में बेटा ख़त्म हो गया। वो छाती पीट कर और हाथ मार कर रह गये। उनको लगा कि यह जिन्न का काम है। उसी ससुरे ने बेटे को मार डाला है। इतने दिनों बाद ससुरे ने आख़िर घात कर ही दिया। वरना, दो घंटे की बीमारी में कोई मरता है? जबकि बात इससे अलग हट कर थी। उनके साथ फिर छल हुआ था।

उनके मास्टर भाई की नज़र उनकी ज़मीन-जायदाद पर शुरू से लगी हुई थी और कम अक्ली बेटा उनकी आँखों में काँटे की तरह चुभता रहा था। 'केशो भाई, जिन्न ने आपके बेटे को नहीं मारा है। आपके साथ छल हुआ है।' लोगों ने कहा तो एक बार फिर उनका मुँह खुला का खुला रह गया। लेकिन इस बार उन्होंने लिहाज़ नहीं किया। उसी रोज़ अपना हिस्सा अलग कर लिया।

भाइयों से अलग होने के बाद उन्होंने खेती में जी-जान से मेहनत की। उनके साथ पत्नी भी लगी रहीं। उनकी लगन, मेहनत और फसल देख कर मास्टर भाई को लगा कि कुछ साल के भीतर दोनों भाइयों को वो पीछे ढकेल देंगे। वो नुक्ता-चीनी पर उतर आए। गाँव के जो भी बुज़ुर्ग मास्टर भाई को मिलते वो उनसे शिकायती लहज़े में बोल प ते 'हमने क्या दुख दिया था उसे कि हम लोगों से अलग हो गया। जीना-मरना किसी के बस के हैं? उसकी हालत हमसे देखी नहीं जाती। आप गाँव के बुज़ुर्ग हैं, उससे कहिये कि फिर से हमारे साथ हो ले। दोनों प्राणी को सुख से रखेंगे।' बुज़ुर्ग हाँ-हूँ करके रह जाते।

सच बात यह थी कि बटबारा हो जाने से मास्टर भाई के घर में खर्चा कम प ने लगी थी। सुख-सुविधा में कमी होने लगी थी। केशो काका के घर में दो प्राणी के हिसाब से कुछ ज्यादा आने लगा था और उनके घर में कम। नुक्ता-चीनी से जब बात नहीं बनी तो केशो काका की खुशामद पर उतर आये। उनके पाँव तक पक लिये पर केशो काका टस से मस नहीं हुए।

केशो काका की उम्र अब ढलने लगी थी। और दिनभर खेती में लिथ` रहने के कारण उनकी पत्नी कुछ अस्वस्थ रहने लगी थीं। दालान और चौपाल में उनका उठना-बैठना बहुत कम हो गया था। लोग कथा सुनने की प्रतीक्षा में बैठे रहते और वो भोजन करके घर में ही सो जाते, क्योंकि थकान अब उन पर भी भारी होने लगी थी। उनके मन में हुलास तो खूब उठती कि लोगों के बीच जाकर बैठें और जी-भर कथा सुनाएँ। पर थका-हारा शरीर साथ नहीं दे पाता। इस बीच अपने जीवन और काम से सम्बन्धित कई कथाएँ भी उन्होंने गढ़ ली थीं।

यह सब देख कर गाँव वालों को लगा कि इस तरह हा तो मेहनत करेगा तो उनका कथा कहुआ समय से पहले ही उनके बीच से उठ जायेगा। कथा सुनने से तो वो वंचित हो ही जाएँगे, एक अच्छे व्यक्ति को भी खो देगें। कथाएँ तो लुप्त होंगी ही, दालान-चौपाल भी सूने हो जाएँगे।

'केशो काका, दो प्राणी के खाने के लिए आपके घर में क्या कमी है कि हा तो मेहनत करते हैं आप? अरे, मर्दवा जान है तो जहान है। यह उम्र मेहनत करने की नहीं सुख भोगने की है। एक हलवाहा क्यों नहीं रख लेते? आपको भी सुख और घरवाली को भी सुख।' गाँव के कुछ लोगों ने उनसे कहा तो यह बात उनको जँच गई। तुरन्त एक हलवाहे को पसेरी भर रोज़ के अनाज पर रख लिया। खेती-बा ी और घर-गृहस्थी का सारा काम हलवाहे के परिवार के जिम्मे कर के वो दालान और चौपाल में फिर से लौट आये। नई-नई कथाएँ और नई-नई बातें।

समय बीतता गया और समय के साथ उनकी उम्र भी बढ़ती गई। पत्नी जो अस्वस्थ थीं, चलने-फिरने से अब लाचार हो गई थीं। अपने बूते के हिसाब से वैद्य-हकीम से इलाज़ भी करवाते रहे। पर ठीक होना नियति को मंज़ूर नहीं था। खाट पर प`-प` एक रोज़ वह चल बसी। पत्नी को बेटा मरने का शोक लग गया था। पत्नी की मृत्यु के साथ ही केशो काका कटे पे की तरह ढह गये और इतनी जल्दी बुढ़ा गये कि लोगों को आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। उनकी आँख की ज्योति भी जाती रही।

नब्बे साल की उम्र वो पार कर चुके हैं। और शेष उम्र हलवाहे के परिवार के सहारे काट रहे हैं। उन्होंने अपना सब कुछ हलवाहे के नाम कर दिया है। वो अब भी कथा गढ़ते और बुनते हैं। पर राजे-महाराजे और राजकुमारों की नहीं, जीवन और सरोकारों की कथा गढ़ते हैं। उनके साथ दिक्कत अब यह है कि न वो कथा कह सकते हैं, न स्वर साध सकते हैं। वो जब भी ऐसा करते हैं उनके पोपले मुँह से आवाज़ फिस्स् ऽ ऽ ऽ करके रह जाती है। और हफनी शुरू हो जाती है।

लोगों के लिये वो खुद अब कथा हो गये हैं।

....ताकि बचा रहे जीवन

जय चक्रवर्ती

हमारे जन्मने से पूर्व
धरती पर
जन्मा एक वृक्ष
पैरों ख` होना और कलम पक कर
'क' से कविता लिखना सीखने से
श्मशान तक की यात्रा में
वृक्ष एक क्षण को भी नहीं भूला अपना फ़र्ज़
धूप में जब जले हमारे पाँव
शीत में जब गले हमारे हा
वृक्ष नहीं भूला हमें अपनी छाती से लगाना।

हमें खिला कर खुद रहा भूखा
हमें सुला कर खुद जागा सारी रात
भूख में रोटी, प्यास में पानी
बीमारी में दवा, बेचैनी में हवा बन कर
वृक्ष रहा हमारा सरपरस्त।

अपने फूलों की मुस्कान
खुशबुओं की मिठास
पत्तियों के संगीत और शाखाओं पर
चहकती चि यों के गीत से
हमारी संवेदनाओं को संजीवनी और
जीवन को अर्थ प्रदान करने में
वृक्ष कभी नहीं भूला वृक्ष होना।

आज जबकि आदमी -
भूल गया है आदमी होना,
तो,
चलो,
चलो बचायें,
बचायें एक वृक्ष
ताकि बचा रहे जीवन।

बची रहे संवेदना
बची रहे धरती।

उपहार

करुणाश्री

जीवन अनहोनी के चक्र से भरा प ा है। विधाता ने प्रत्येक मानव के साथ कुछ न कुछ अच्छा-बुरा घटित किया और उसे मानव को भोगना प ा। मानव जीवन में कुछ भी अचानक नहीं होता, पूर्व-निर्धारित कार्यक्रम के आधार पर घटित होता है। कर्म गति ही सब खेल खिलाती है।

मानव-कर्म, मनन-चिन्तन शक्ति से बनकर तैयार होता है। यह जीवन-दर्शन का सार्वभौमिक सत्य है। इसलिए मानव को जीवन-कर्म-स्थल में अपनी निर्णायक भूमिका एक कुशल खिला ी के रूप में निभानी प ती है, जिसका मूल्य केवल उनकी आत्मा, उनका दिल, उनकी सोच को ज्ञात था। आज इसका एहसास पण्डित सुखराम का परिवार कर रहा था।

पण्डित सुखराम कुटीर में एक अजीब-सी ख़ामोशी-सन्नाटा छाया था। मानों यह कुटीर वर्षों से मौन हो। पण्डित सुखराम की अर्द्धांगिनी गौरी पण्डित पति के कमरे में ख़ामोश-सी बैठी, उनकी तस्वीर को निहार रही थी। घर का पुराना नौकर संतुराम उनके निकट बैठ कर अपना धर्म निभा रहा था। बहू अथैया, काकी गंगा के साथ रसोई में काम-काज में व्यस्त थी, क्योंकि पहली रसोई का भोजन सास को निकालना था। बाद में पण्डित के यहाँ थाली भिजवानी थी। इसलिए स्नान आदि से निवृत हो कर यह काम करने का आदेश था।

घर का ब ा बेटा यदुनाथ दसवें की रस्म की तैयारी में लीन था। छोटा बेटा विजय घर का सामान और तेरहवें का न्यौता देने गया था। इकलौती पुत्री शर्मिष्ठा अपने लाडले को नहला रही थी। इस प्रकार पण्डित सुखराम का परिवार उनकी आत्मा को शांति पहुँचाने के लिए उनके नेक कर्म का प्रसाद सभी तक पहुँचाने की चेष्टा कर रहा था।

गौरी के आँसू रुक-रुककर बह रहे थे। आज वह स्वयं को नितांत अकेली-असहाय महसूस कर रही थी। हालाँकि कहने को उनके पास सबकुछ था। समाज की मानी हुई हस्ती थी। पण्डित सुखराम विरासत में सम्मान, इज़्ज़त, प्रेम की दौलत छो कर गये थे। फिर भी सुहागिन नारी का अचानक सुहाग छिन जाये तो स्वयं को बेजान-सा महसूस करने लगती है। पति के बिना नारी का सुख नहीं, तो औलाद के बिना ममत्व नहीं होता। वह अपूर्ण मानी जाती है। लेकिन जन्म-मरण तो विधाता की निधि है। पहले कौन जायेगा? यह प्रश्न विचारणीय नहीं है।

गौरी के जीवन में असमय जो घटित हुआ उसके लिए वह तैयार नहीं थी। मन ही मन प्राण कोंध रहे थे कि 'मैंने किसी का क्या बिगा ा था, जो अचानक मेरा सौभाग्य छिन गया। मेरे स्वामी ने निःस्वार्थ भाव से सब का भला किया। सभी के दुःख-सुख में काम आये, फिर भी ईश्वर ने रहम नहीं खाया। सारी जिम्मेदारियाँ अधूरी छो कर अकेले सफ़र पर निकल प े। क्यों भोलानाथ ऐसा तूने क्यों किया, क्यों किया?' बार-बार मुख से यह बात बुदबुदातीं, और अश्क़ बहते रहते। संतुराम भी समझाता 'पण्डिताईन जी, मन छोटा न करो। अभी शेष काम बहुत प े हैं। ईश्वर का उपहार था सो चला गया। उस महान-आत्मा के कर्म को देखो। आपको कहाँ से कहाँ पहुँचाया। जीवन में कठोर तप करके यह कुटिया तैयार की। उनकी प्रेरणा, उनका चरित्र कितना विशाल था। सभी के दुख को गले लगा कर अपना सुख लुटा दिया। समाज का पहियाँ थे। सबको साथ लेकर चलना जानते थे। मेरी सारी जवानी और बुढ़ापा इसी परिवार में गुज़रा। मैंने ऐसी दृढ़ चट्टान का व्यक्तित्व कभी नहीं देखा। सच में दूसरे राम जी थे।'

'सो तो है संतुराम' गौरी पण्डित ने उदास स्वर में कहा।

इसी बीच गंगा काकी ने आकर कहा, 'ब ी दीदी, रसोई और कच्चा आँगन में पुताई हो गई है। चल कर देख लो नहीं तो फिर कुछ कहोगी?'

'आती हूँ भौजी।' गंगा गौरी पण्डित की पुरानी महाराजन (खाना बनाने वाली) थी और आयु में भी ब ी थी। इसलिए गौरी उन्हें सम्मानपूर्वक बुलाती थी। गौरी पण्डित सुस्त उदास कदमों के साथ उठी और रसोई देखने चली गई।

'माँ-माँ ओ माँ, सब घर में परसाद ग्रहण का न्यौता दे दिया है। पग ी का सामान किधर रखूँ?' विजय ने पूछा

'बेटा अपने बाबा के कमरे में रख दे। संतुराम से कह देना वह जमा देगा।'

'ठीक है माँ।' विजय इतना कह कर चला गया जहाँ संतुराम बैठे थे।

सब सामान देख कर संतुराम ने कहा, 'लल्ला, तनिक बैठो और थो ा दान-पुण्य का सामान लिख लो। गरीबन को माँ के हाथों दान दिलवा के बाबू की आत्मा को शांति दिलवायी देंगे।'

'ठीक है काका, जरा जल्दी करिये। हलवाई के पास भी जाना है।' विजय ने कहा, और पिता के विषय में सोचने लगा. . . .

'सचमुच पिताजी कितने नेक, सज्जन और निष्ठावान थे। जीवन नैया को चलाने में बचपन से वृद्धावस्था तक पतवार को सँभाले रखा। डगमगाये भी मगर ठौर ले ली। आर्थिक तंगी से भी युद्ध किया। पेट की अग्नि को शांत करने के लिए केवल चावल का माँड पीकर भी दिन गुज़ारे। लेकिन चेहरे पर अभाव के भाव अंकित नहीं होने दिये। कर्मठता और श्रम को दिल की चादर में लपेटे रखा। परिवार को भी आगे बढ़ाने की चाहत बनाये रखी। धीरे-धीरे पतवार को चलाते-चलाते लगन-मेहनत से ऊँचे ओहदे पर पहुँच गये। इसके साथ ही ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ आस्था उनके जीवन की सफलता की कुंजी थी। शुभ चिन्तन और परोपकारी विचारधारा से अपने जीवन को बाँधे रखा। आज उसी सब का सुखद परिणाम है कि हम सब सुख-शांति का जीवन भोग रहे हैं। उनके आशीर्वाद से श्रम के फूल खिल रहे हैं। लेकिन अचानक देह का त्याग दुख का कारण बन गया। शायद ईश्वर को भी नेक इंसानों की जरूरत होती है इसलिए साठ बसंत के पार ही अपने पास बुला लिया। बाबा-बाबा, आप सचमुच इंसान के रूप में देवता थे। मुझे गर्व है कि मैं आपका बेटा हूँ। आपकी आत्मा की शांति के दिन प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जीवन में आपके आदर्शों का पालन करके समाज को नयी दिशा दूँगा। जीवन को सूर्य की तेज किरणों की भाँति तेजस्वी बनाने का प्रयास करूँगा। आपका हाथ मेरे सिर पर सदैव रहेगा।'

इतना कहते-कहते विजय की आँखों से आँसू बहने लगे और बहते रहे। इसी बीच संतु राम ने सामान की लिस्ट देने के लिए आवाज़ दी। विजय आँसू पोंछते हुये गया, संतुराम ने देखा विजय रो रहा है। बोला, 'क्यों आँसू बहा कर महान आत्मा को कष्ट पहुँचा रहे हो? उनके कार्य, कर्म, मेहनत से प्रेरणा ले कर अपना जीवन ऊँचा उठाओ। सेवादान करो। तभी बाबा का यह सब लिया-दिया काम में आयेगा। उनके अनोखे उपहार को अपने हृदय में रख कर प्रेम-ज्योति जलाओ। चलो उठो, यह लो पर्चा, दौ कर सामान लेकर आओ।' विजय गम्भीर-सा सामान लेने बाजार को चल प ा।

पण्डित द्वारा निकाले गये मुहूर्त के अनुसार पग ी की रस्म का समय प्रातः ग्यारह बजे का था। सभी रिश्तेदार-परिचित जन इत्यादि पण्डित सुखराम की आत्मा की शांति और प्रसाद ग्रहण करने आये थे। यहाँ तक कि घर के द्वार पर वो सभी भिखारी भी मौजूद थे जिनको नियम से पण्डित जी एक वक्त का भोजन देते थे। आज सभी के चेहरे उदास और आँखें नम थीं। ब े बेटे यदुनाथ को पग ी पहनायी जा रही थी। माँ गौरी पण्डित एक कोने में ख़ामोश, बेहद उदास, थकी-सी बैठी ग़मगीन माहौल को निहार रही थी और साथ ही अपने स्वर्गीय पति की तस्वीर को गहरायी से देख रही थी। सोचने लगी, 'ईश्वर ने इतनी जल्दी साथ छीन लिया। स्त्री की दौलत तो उसका पति होता है। उसकी इज़्ज़त भी उसी से बनी-जु ी रहती है। फिर इतना अन्याय क्यों हुआ? तकदीर का दोष है या भाग्य का फैसला? लेकिन मेरा भाग्य इतना निर्बल तो नहीं है। मेरे पति ने ही मेरा भाग्य बदला था। मुझे कहाँ से कहाँ पहुँचाया। जीवन का अनोखा उपहार दिया। समाज का सर्वोच्च दर्जा दिलाया। अपने कुलीन परिवार में बहू का दर्जा दिया। तीन सुन्दर बच्चों की माँ का दर्जा दिया। फिर कहाँ मेरा

भाग्य दोषपूर्ण रहा। दोषपूर्ण तो विवाह के पूर्व था। जब पण्डित जी ने मुझे कलंकित समाज से निकाल कर संभ्रान्त समाज में नारी महत्व का दर्जा दिया। नारी होने का एहसास दिलाया। स्त्री-जीवन विवाहोपरान्त ही बनता है। ऐसी धारणा हमारे शास्त्रों में है और बुज़ुर्गों ने कहा है।'

इन्हीं सब स्मृतियों के साथ श्रीमती गौरी अपने अतीत के झरोखों में कैद हो गयीं, मानों कल की ही बात हो - 'पचपन वर्ष पूर्व का जीवन और अभी के जीवन में फर्क़ तो था ही। आज की गौरी पण्डित, उस समय की गौरांगना बाई के नाम से मशहूर थी। विरासत से मिली नूपुर की झंकार बनारस की स कों पर साँझ होते सुनायी देने लगती थी। गौरांगना बाई की अम्मी जौहर बी राजघराने की नृत्यांगना रह चुकी थी। पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसी पेशे में लिप्त होने से धन का अथाह भण्डार था। सभी अपने आलम में मस्त रहते थे।

गौरांगना बाई नाज़ुक, कमसिन और सौन्दर्य की पुतली थी। लम्बे काले केश, तीखी नाक, हरिणी के समान नेत्रों को देख कर हर पुरुष तो क्या नारी भी उस सौन्दर्य में डूबने की इच्छा रखती थी। जौहर बाई ने ब े नाज़ों से अपनी लाडो को पाला था। यह लाडो बनारस के धनी शरीफ सेठ सूरज प्रसाद की संतान थी जिसे जौहर बाई ने प्रतिशोध लेने की भावना से अगुआ करवा लिया था। सूरज प्रसाद को जब पता चला तो सिर पीट कर रह गये। लाख प्रयास किये पर बेटी को पा नहीं सके। यह सच था कि सूरज प्रसाद जौहर बाई से हृदय से प्रेम करते थे, लेकिन जौहर बाई की चाल से वाकिफ़ नहीं थे। धन ऐंठने के चक्कर में जौहर बाई ने एक शाम महफ़िल में शराब में धतूरा मिला दिया और उसी शाम अपनी यौवन में उफनती प्यास बुझाकर सूरज प्रसाद के मुख पर कालिख पोत दी। सूरज प्रसाद के अन्दर नफ़रत-सी पैदा हो गयी। उन्होंने जौहर बाई की महफ़िल में आना बन्द कर दिया।

समय गुज़रता चला गया। जौहर बाई ने एक सुन्दर कन्या को जन्म दिया। इसकी सूचना सूरज प्रसाद को भिजवा दी। सूरज प्रसाद ने कन्या को लेने की माँग की। लेकिन जौहर बाई ने भारी-भरकम रक़म की माँग की। सूरज प्रसाद अपने ख़ून को गलियों-महफ़िलों की शोभा नहीं बनने देना चाहते थे। इसलिए लाखों का सौदा करके बेटी को ले लिया और पालने का बी ा उठाया।

जब लाडो एक वर्ष की हुई तो जौहर बाई को ममता ने रुला दिया। वह बच्ची को देखने के बहाने सूरज प्रसाद की कोठी पर आ गयी। सूरज प्रसाद घर से बाहर थे। नौकर की देख-रेख में लाडो रह रही थी। जब नौकर सुखिया ने अजनबी महिला को देखा तो पूछ बैठा, 'किससे मिलना है, मेमसाहब?'

'सूरज प्रसाद जी से।'

'सेठ जी तो पटना गये हैं। पटरानी जी को लाने।'

जौहर बाई चौंक प ी। उसके दिमाग में बिजली कौंधी। उसके कानों में सौतेली माँ शब्द गूँजने लगे। तुरन्त फैसला कर लिया। लाडो को यहाँ नहीं पलने देगी। इशारे से उसने अपने साथ आये पहलवान को बुलाया और लाडो को उठाने का फैसला कर लिया। नौकर को पानी लाने का आदेश दिया। सुखिया रसोई-घर की ओर बढ़ा ही था कि पहलवान ने लाडो को गोद में उठाया और तेजी से बाहर निकल गया। पीछे-पीछे जौहर बाई भी चली गयी। सुखिया कमरे में आया तो तीनों नदारद थे। वह चीखता-चिल्लाता बाहर दौ ा, जब तक गा ी जा चुकी थी।

सूरजप्रसाद की वापसी दुखदायी साबित हुई। बेटी के अपहरण से विचलित हो गये। उन्होंने पटरानी को मनहूस की घ ी समझ कर घर में पैर रखने से पहले ही दूसरा रास्ता दिखा दिया और लाडो की खोज में निकल प े। करीब छः माह के पश्चात् उन्हें एक खत मिला। जौहर बाई का नाम देख कर चौंक गये। लिखा था, 'सूरज प्रसाद मेरी लाडो मेरे पास है। सौतेली माँ के द्वारा मेरी लाडो का पालन नहीं होगा। इसलिए उसको अगुआ कर लिया। पटरानी के आने की मुकारकबाद कबूल करें। पुलिस की मदद लेना व्यर्थ है। यदि ऐसा किया तो लाडो की लाश मिलेगी, यह मेरा अटल फैसला है। तुम्हारी जौहर बाई।'

सूरज प्रसाद खून क घूँट पीकर रह गये। बदनामी से बचने के लिए एक और त्याग कर दिया। अपने भाग्य को कोसने लगे। दिमागी हालत ठीक नहीं होने से व्यापार गिरता चला गया। घाटे पर

घाटा आ गया। इन्हीं परेशानियों की वज़ह से सूरज प्रसाद ने फाँसी लगा कर जीवन-लीला ही समाप्त कर ली। अगले दिन समाचार पत्रों में सुर्खियों में समाचार प्रकाशित हुआ 'सेठ सूरज प्रसाद ने आत्म-हत्या की।'

जौहर बाई को पता चला तो उसने चैन की साँस ली और फिर लाडो को अपनी जीवन-शैलीय में प्रशिक्षण देना शुरू कर दिया। लाडो का यौवन निखरना शुरू होने लगा। घुँघरुओं की झम-झम और तबले की ताल पर पैर थिरकने लगे और थिरकते गये।

देखते-देखते नीले आकाश से घटायें बिखरने लगीं। कभी क्षितिज साफ होता तो कभी काली बदलियों से घिरा रहता। ऐसा ही उतार-चढ़ाव लाडो के किशोर बसंत पर बना रहा। एक दिन उस्ताद ज़माल खाँ, अलाप का रियाज़ करवा रहे थे। क्योंकि लाडो को मेरठ की महफ़िल में भेजना था। जिसके पास फन की कला उत्तम होती थी, उसे हीरों से गोद में भर कर 'महफ़िलें-ए-शौला' की उपाधि से क़दर करते थे। इसलिए उस्ताद अपनी शागिर्दा को लगन से सिखा रहे थे। लाडो का दिल भी खूब लगने लगा। कोयल-सी मधुर वाणी से जब स्वर फूटते तो महफ़िल में रौनक आ जाती थी। लेकिन कभी-कभी उस्ताद जी लाडो के नाम से चिढ़ जाते थे। इससे उन्होंने जौहर बाई को साफ शब्दों में कहा, 'जौहर बी, हम एक बात साफ कहे देते हैं। लाडो का नाम बदल कर दूसरा नाम रख दो। लाडो बेतुका-सा नाम है।'

'अरे उस्ताद जी, जैसा मुनासिब समझो वही प्यारा-सा नाम तोहफ़ा भेंट कर दो। मुझे कोई गिला-शिकवा नहीं।' जौहर बाई पान को चबाते हुए बोलीं।

'तो ठीक है ब ी बी, सुन्दर-सा नाम हमारे ज़ेहन में उतरता है - गौरांगना।'

'अरे वाह उस्ताद जी, क्या तोहफ़ा भेंट दी है। दिल खुश हो गया। हम भी अपनी लाडो को गौरांगना बाई कह कर ही बुलाएँगे।'

तब से ही गौरांगना के नाम से मशहूर हो कर महफ़िलों की शोभा बढ़ा रही थी लाडो। ईद के दो दिन पहले, गौरांगना को मेरठ जाना था। इसलिए सुन्दर-सुन्दर ड्रेसों से बैग सजा रही थी। ज़ेवरात, खनकती चू याँ आदि भी रख रही थी। जौहर बाई ने अल्लाह से सलामती की दुआ माँगी। आकर कामयाबी के लिए महरूम फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ का कलाम पढ़ कर विदा दी।

देश भर की 'महफ़िलें-ए-नृत्यांगना' मेरठ के छावनी बाजार में एकत्रित हुईं। सभी हमउम्र के यौवन की बगिया की कलियाँ थीं। सभी ईद का चाँद देखने की प्रतीक्षा में थे, क्योंकि उसी दिन ही सबको किस्मत आज़मानी थी। इस कार्यक्रम को देखने के लिए लोग दूर-दराज़ से आते थे। कई समाज-सेवी संस्थाएँ भी शरीक होती थीं, फन की कद्र करने के लिए व उनको मदद देने के लिए ताकि जीवन खुशहाली से भरा रहे।

इसी महफ़िल की एक शान थी 'स्वयंसेवी संस्था' जिसका कार्य था किशोरियों की शिक्षा-व्यवस्था करना, चाहे उनका कर्म कितना भी घिनौना क्यों न हो। इस स्वयंसेवी संस्था का नाम था 'कल्याण हितकारी संस्था'। इसके प्रधान थे, युवा सुखराम। गम्भीर, नेक-दिल इंसान थे वे। अपनी उदारता और शराफत के लिए प्रसिद्ध थे। इनके पास किसी भी समय कोई भी मदद लेने चला जाये तो निराश नहीं लौटता था। वे अपने व्यक्तित्व के स्वयं मालिक थे। अनोखी चमक का व्यक्तित्व था। वो मेरठ की महफ़िल में शरीक होने आ गये।

करीब सांय आठ बजे 'महफ़िल-ए-बहार' कार्यक्रम आरम्भ हुआ। सभी के क्रमवार से कार्यक्रम हुए। देखने वालों ने दाद दी। जब गौरांना का नृत्य आरम्भ हुआ तो सबकी नज़रें उस किशोरी की सुन्दरता पर ठहर गयीं। रसीले अधर, हरिणी समान नयन, तीखी नाक, इकहरा बदन सभी को लुभाने वाला था। सुखराम की नज़रें कुछ पल के लिए ठहर गईं, उस अनुपम सौन्दर्य की देवी को देख कर। उन्होंने सोच लिया था कार्यक्रम के पश्चात् उससे मिलने की। उनका विचार था कि वो गौरांगना को इस महफ़िल से अलग रह कर स्वस्थ महफ़िल में शरीक होने की दावत देंगे।

दो दिन पश्चात् 'महफ़िले-ए-नृत्यांगना' कार्यक्रम समाप्त हुआ। सभी नृत्यांगनाओं के कला की तारीफ़ हुई। 'महफ़िले-नूर-निशान' शील्ड गौरांगना बाई को प्रदान की गई। साथ ही २१हजार की रक़म भी दी गई। गौरांगना बाई की ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहा। तहज़ीब के साथ नज़राना क़बूल किया। दूसरी नृत्यांगनाओं ने बधाईयाँ भी दीं। गौरांगना ने मधुर आवाज़ में कहा, 'अल्लाह की मेहरबानियों का नतीज़ा है।'

उन्हीं मुबारकबाद देने वालों में सुखराम भी थे। गौरांगना ने सजीले नौजवान की मुकारकबाद को ब ी शान से क़बूल किया। इस दौरान सुखराम ने अपना सम्पूर्ण परिचय बेहिचक दे दिया। गौरांगना बाई को प्रसन्नता हुई। उसने भी अपनी इच्छाओं का इज़हार शालीन तरीके से किया। वह सुखराम की संस्था की सदस्य बनने को तैयार हो गई। लेकिन कुछ दिन प्रतीक्षा करने के लिए कहा।

इस तरह सुखराम को संतोष हुआ कि शिक्षा-क्षेत्र में भी तवायफ़ वर्ग की रुचि है। उन्होंने सब का पता-ठिकाना ले कर विदा ली।

गौरांगना बाई बनारस पहुँचीं तो जौहर बाई ने बलाइयाँ उतारीं। अपनी लाडो का माथा चूमा और कहा, 'बेटी, ऐसे ही महफ़िलों की शोभा बनी रहो। मुझसे जो भी उपहार माँगो, मैं दूँगी।'

गौरांगना बाई ने समय की नज़ाकत का फायदा उठाया। अपने हृदय में छिपी भावना को व्यक्त करने का समय आ चुका था। पढ़ने की चाहत से दिल में एक हलचल-सी पैदा हो गई थी। वह चाहती भी थी कि कुछ तालीम हासिल करके जीवन में बदलाव लायें। नया जीवन जीने की ललक ने उसके मुख से स्वतः ही शब्द निकलवा दिये और वह बोली, 'अम्मी, मैं तालीम हासिल करना चाहती हूँ। आपकी इज़ाज़त चाहिये।'

जौहर बाई के पैर यह सुन के धरती में धँस-से गये। त्योरियाँ चढ़-सी गईं। बेटी के दिमाग में तालीम की इच्छा जान कर बिफर-सी गयीं और ऊँची आवाज़ में बोलीं, 'लगता है लाडो के पर निकल आये हैं। मेरठ क्या गई, सब कुछ भूल गई। लगता है किसी 'मनचले' ने पट्टी पढ़ाई है, अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए।'

'नहीं. . . .नहीं अम्मी, ऐसा कुछ नहीं समझो। मेरा मन तो पहले से ही था। लेकिन आपके आगे बोल नहीं सकी। तालीम का खर्च मैं आपसे नहीं लूँगी। सुखराम जी की संस्था ही हम जैसे समाज के लोगों के लिए काम करती है। बस, आप एक बार इज़ाज़त दे दें। मैं एहसान मानूँगी।'

'नहीं. . . .नहीं बेटी, ये ऊँचे समाज के लोग केवल प्रलोभन ही देते हैं। तेरी जवानी को पीकर, निकाल फेंकेंगे। मैंने दुनिया देखी है। अभी तू नादान है। हमारा समाज ही हमारा भला कर सकता है, और कोई हमारा सगा नहीं है। हमारी कला और हमारी जवानी ही हमारा साथ देगी। उसी से ज़िन्दगी गुज़रेगी। बेहतर है अपना ध्यान अच्छे नृत्य सीखने में लगाओ। यह भी ब ी तालीम है। बस, इतना ध्यान रहे दौलत ही हमारी असली विरासत है।'

'अम्मी, आप ऐसा मत सोचें। मैं इस पेशे से अब ऊब गई हूँ। अपने समाज के जीवन में ही तबदीली लाना चाहती हूँ। सिर्फ़ एक बार मौका दें। यदि कहीं गलत कदम प े तो छो दूँगी।' गौरांगना ने कहा।

'नहीं. . . .नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।' जौहर बाई ब ी रुखाई से बोलीं और कमरे में चली गयीं।

माँ-बेटी में कशमकश चलती रही। गौरांगना की आँखें रो-रोकर सूज गईं थीं। उस्ताद जी शागिर्दा का दुख नहीं देख पाये और एक दिन जुम्मे की नमाज़ अदा करके सीधे जौहर बाई के पास चले गये और बोले, 'क्यों जौहर बाई मासूम का दिल तो रही हो? तुमसे शिक्षा की दौलत ही तो माँग रही है। किसी प्रेमी का हाथ तो नहीं। जानती है तालीम में जीवन का रहस्य छुपा है। इंसानी ज़ज़्बातों की कद्र करना सिखाती है। ज़ेहन में नयी-नयी कलाओं, विचारों का ख़ज़ाना सिखाती है। यदि हमारे समाज को तबदीली मिलती है तो क्या नुकसान है?'

'लेकिन उस्ताद जी, यह कैसे भूल रहे हैं कि हमारा बुढ़ापा कैसे कटेगा? मैं तो बूढ़ी घो ी हो चुकी हूँ। शरीर ढलने लगा है। तुम्हारा हाथ भी सारंगी और तबला बजाते-बजते ढीला प गया है। खाने को कौन पूछेगा?' जौहर बाई ने चिढ़कर कहा।

'छिः-छिः जौहर बी, बहुत ही स्वार्थी निकलीं तुम। अपने ही खून से गद्दारी करने लगीं। यह क्यों नहीं सोचती कि अपनी लाडो को हर रात नया इतिहास रचना प ता है। जुआरी-शाराबियों के हाथों बिकना प ता है। देखती नहीं हो हर रोज़ कितने मनचले उस कली पर मँडराते रहते हैं। तुम इसीलिए तो पहलवानों से निगरानी कराती रहती हो कि कहीं कुछ उल्टा-सीधा न हो जाये। लाडो की आबरू से खेल नहीं सकें। इसलिए हमें तालीम दिलवाने में परेशानी नहीं होनी चाहिये। तालीम दिलवाने में धन ही धन है। फिर हम भी अपनी लाडो को अच्छे लोगों के साथ उठते-बैठते देखना चाहते हैं। उसका घर-संसार बसाना चाहते हैं। आख़िर वह हमारी बच्ची है। इतनी बेरहम न बनो। कुछ न सोचो और भेज दो।'

जौहर बी कुछ गम्भीर हुईं और कल्पनाओं में डूब गईं। कुछ क्षण के पश्चात् ठंडी साँस भर कर बोलीं, 'जैसा ठीक समझो उस्ताद जी। आख़िर वह तुम्हारी ही चेली है।'

उस्ताद जी खुशी से झूम उठे और गौरांगना के कमरे में गये व उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले, 'उठ मेरी बच्ची। तेरी तमन्ना पूरी हो गई, चल तैयारी कर। तुझे तेरा 'उपहार' मिल गया। जौहर बी मान गई हैं।'

गौरांगना खुशी से नाच उठी। चेहरे पे पुनः रौनक आ गई। वह तैयारी करने लगी सुखराम कल्याणकारी संस्था में जाने के लिए।

गौरांगना को कल्याणकारी स्वयंसेवी संस्था में आए छः मास गुज़र चुके थे। लगन, परिश्रम से तालीम सीख रही थी। सुखराम भी खुश थे। किशोरी ने जल्दी ही सीख लिया।

एक दिन ज्ञान प्रतियोगिताओं का आयोजन हुआ। सुखराम ने गौरांगना से कहा, 'तुम्हें भी हिस्सा लेना है। इसमें पास हो जाओगी तो विदेश में जाने का मौका मिलेगा।' गौरांगना सहर्ष तैयार हो गयी और तैयारी में लग गई।

१५अगस्त को कला मंदिर में प्रतियोगिता का आयोजन रखा गया। गौरांगना सादे लिबास में सुखराम के साथ गई और प्रतियोगिता में हिस्सा लिया। रिजल्ट उसी दिन आना था। इसलिए दोनों को रुकना प ा। सभी प्रतियोगियों के नाम लिये गए। प्रथम इनाम गौरांगना को मिला। सुखराम की खुशी का ठिकाना नहीं रहा और दौ कर उसने उसके माथे को चूम लिया। गौरांगना लजा गई और उसने निग़ाहें नीची कर लीं।

इस तरह गौरांगना की जीवन-दिशा को सुखराम (जीवन इलाही) ने बिलकुल बदल दिया और उसके विदेश जाने की तैयारी करने लगा।

इसी बीच सुखराम के पिता दीवान चन्द जी ने कहा, 'बेटा, तुम्हारी निःस्वार्थ सेवा देख कर समाज को नयी दिशा जरूर मिलेगी। लेकिन अपनी जीवन-दिशा में भी तबदीली लाओ। गृहस्थ जीवन बसाने की सोचो, चौबीस बसंत पार कर चुके हो। जहाँ भी इच्छा हो, बता दो।'

'पिता जी जैसी आपकी इच्छा। आप जानते हैं कि मेरा कर्म ही समाज सुधार का है, तो गौरांगना को अपने जीवन में लाना चाहता हूँ। सुशील कन्या है। मेहरबानी करके जौहर बाई की इज़ाज़त दिलवा दें। तभी मैं भी इनके साथ विदेश चला जाऊँगा।' सुखराम ने कहा।

दीवान चन्द पुत्र की इच्छा देख कर खुश हुये कि कथनी और करनी में अन्तर नहीं है। नारी का उद्धार करना हमारी सभ्यता, संस्कृति का धर्म है। क्योंकि नारी घर की शांति है तो पूँजी भी। नारी को अच्छा घर-वर मिल जाये तो जीवन-दिशा ही बदल जाती है। इसलिए उन्होंने स्वीकृति दे दी। लेकिन सुखराम के दादा रूपचन्द ने सुना कि पोता तवायफ़ से विवाह कर रहा है तो भ क उठे। विवाद ख ा कर दिया। लेकिन दीवानचन्द ने पिता की जगह बेटे के भविष्य की चिन्ता की और पण्डित को बुलाने का आदेश दिया।

जौहर बाई ने सुना तो खुश हुई कि बेटी का जीवन सँवारने वाला साथी मिल गया है। उस्ताद जी का इंतकाल हो चुका था। उनकी तस्वीर के सामने जौहर बी ने कहा, 'उस्ताद जी, तुम्हारी इच्छा पूरी हो गई। आज मैं लाडो का निकाह करने जा रही हूँ।'

इस तरह पूनम की साँझ को सुखराम और गौरांगना एक-दूसरे से दाम्पत्य-जीवन में बँध गये। गौरांगना को नया जीवन मिला। खुश थी। सुखराम जैसा नेक पुरुष उसके जीवन में आया और जीवन को नयी राह पर चलना सिखाया, यह सबसे ब ी उपलब्धि थी।

सादगीपूर्ण विवाह की रस्म पूरी करके दोनों कनाडा चले गये। समाज में नये नियम, नये उपचार सीखने के लिए जिससे देश में बिखरे बच्चों का जीवन सुधर सके। बेसहारा नारियों की हिफ़ाजत हो सके। तभी कनाडा की संस्था ने सुखराम के त्याग-बलिदान को देख कर उसे पण्डित श्री की उपाधि प्रदान की। गौरांगना को गौरी श्री का सम्मान दिया। सरकार द्वारा धन देकर कई बाल-आश्रम, नारी-निकेतन खोलने के लिए सहायता दी। इस तरह गौरी पण्डित की वापसी देश-समाज के लिए अच्छी साबित हुई।

दोनों ने पूरी ईमानदारी के साथ अपना दायित्व निभाया और शिक्षा के नये आयामों के साथ बच्चों के व्यक्तित्व का निर्माण किया। विकलांग नारियों को स्वावलम्बी बना कर गौरी पण्डित ने अनोखा दान दिया। इस सेवा के लिए भारत सरकार ने उसे 'मातृश्री' की उपाधि से सम्मानित किया।

जौहर बाई वृद्ध हो चुकी थी। अपनी ही हवेली में जीवन गुज़ार रही थी। जब लाडो के बारे में यह बात सुनी तो खुशी से उसकी आँखों में आँसू आ गये। उसने बेटी की सलामती और सम्मान के लिये दुआ माँगी। गौरी पण्डित तीन बच्चों की माँ बन चुकी थी। उसने अम्मी को अपने साथ रखने की गुज़ारिश की थी लेकिन जौहर बाई ने इंकार कर दिया था।

गौरी पण्डित के लिए सुखराम एक अमूल्य निधि के रूप में उनके जीवन में आये थे। पण्डित सुखराम का सम्मान पूरे भारत में फैल चुका था। 'इंसानों का मसीहा' नाम से पहचाने जाने वाले इस नेक दिल इंसान को अचानक एक दिन दिल का दौरा प ा और वो स्वर्ग सिधार गये।

गौरी पण्डित को अच्छे संस्कार पैदा करने वाला पति तो मिला ही था, पर साथ ही वह अच्छा सहयात्री भी था। ईश्वर कृपा से वही अच्छे संस्कार बच्चों में भी आये थे। गौरी पण्डित की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी, सुखराम की अनोखी स्मृतियों को याद करके। इसी बीच संतुराम आये और विचार मुद्रा को भंग कर दिया। गौरी पण्डित चौंक-सी गईं और अपने आदर्श पति की अंतिम इच्छा को पूरी करने के लिए गरीबों को स्वयं के हाथों दान देने के लिए चौके की ओर चल प ीं। पीछे-पीछे संतुराम भी चल रहे थे।

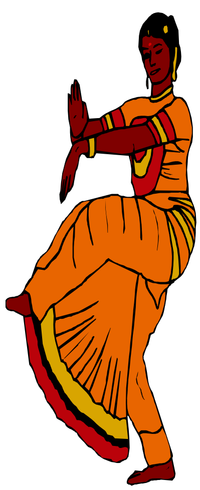

चन्दन हो गया हूँ

डॉ. किशोर काबरा

घिस गया इतना कि चन्दन हो गया हूँ,
झुक गया इतना कि वन्दन हो गया हूँ।

छू लिया मैंने तो पारस हो गये तुम,
छू लिया तुमने तो कुन्दन हो गया हूँ।

आँख में अंजन लगा कुछ इस तरह से,
खामियों के बीच खंजन हो गया हूँ।

चार तिनकों से बने इस घोंसले में,
मुक्ति इतनी है कि बन्धन हो गया हूँ।

बाँसुरी में छन्द को इतना पिरोया,
नन्द था, अब नन्दनन्दन हो गया हूँ।

नियति

स्नेह ठाकुर

रुचि फोन का चोंगा अभी भी पक` हुए थी हालाँकि वार्तालाप कभी का ख़त्म हो चुका था। विनोद का फोन था यह ख़बर देने के लिए कि वो कल दोपहर तीन बजे एअर-कैनडा की फ्लाइट से टोराण्टो पहुँच रहे हैं। वह अतीत की गहराइयों में डूबने ही जा रही थी कि फोन ऑपरेटर की टेप्ड आवाज़, 'प्लीज़ हैंग अप दि फोन, दिस इज़ ए रिकार्डिंग', के दोहराये जाने पर वर्तमान में पहुँच गई।

रुचि ने उठ कर फोन वापिस रखा। चलचित्र-सी खि की के आगे आकर ख ी हो गई। बाहर उजले बादल का उजाला कहीं-कहीं सुबह के साँवले आकाश को बेतरह उजला रहा था। स क धुंध से घिरी हई थी। सुनसान खम्भों पर तैनात बल्बों का प्रकाश मैली सफ़ेद चादर की तरह धरती पर बिछ कर भींग रहा था। रुई के फाहों की तरह रात की अनछुई बर्फ़ प ी हुई थी। प्रभात की किरणें उनसे अठखेलियाँ कर कभी-कभी ऐसे कोंण पर प ती थीं कि उनके कण हीरों की तरह जगमगा अपनी चमक से चमचमा उठते थे। पे ों पर छितरी बर्फ़ साबुन के झाग-सी लग रही थी। धीरे-धीरे धूप सर पर सींग उठाये साँ -सी तन कर ख ी हो गई।

रुचि के हृदय में भी जहाँ नये जीवन की आशा-किरणें प्रस्फुटित हो रही थीं, वहीं सूरज के ताप से इस हल्की-फुल्की बर्फ़ के पानी बन जाने का भय भी समाया हुआ था। ख़ुशी भी थी और आशंका भी कि क्या ये जो कुछ भी हो रहा है वो ठीक है? क्या यह राकेश की स्मृति के साथ विश्वासघात नहीं है !

एक ही स्थिति में ख` रहने से पैर झनझनाने लगा था। रुचि पलटी व सोफे पर अधलेटी-सी बैठ गई। सिर को सीट की पीठ से टिका कर उसने आँखें बन्द कर लीं। बन्द पलकें वर्तमान से कट कर सुदूर विगत के स्मृति-खंडों को बटोरने लगीं। हर छोटी-ब ी घटनाओं के अंश, वार्त्ता-खंड, क्रमहीन संदर्भ जिन पर वर्षों सोचा न था, आज उसने पाया, तरल आँखों में उम ते-घुम ते वो स्मृति-खंड जिन्हें उकेरना अचानक सुखकर हो गया है, एक नई ज़िन्दगी के स्वीकार के बाद भी विगत मन के किसी कोने में अपनी सम्पूर्णता में सुरक्षित थे। वह सोच की कन्दराओं में दूर-दूर तक भटकती रही। कल सत्ताइस सालों के बाद वो फिर विनोद से मिलेगी, वो विनोद जो उसका प्रथम प्यार था। प्यार या आकर्षण या इन दोनों के मध्य की स्थिति ! विचारों के ऊहापोह में खो गई थी रुचि। पेट और पैरों के बीच दबाई सोफे की गद्दी पर ठुड्डी टिकाते हुये रुचि अतीत की गहराइयों में डूब गई। गद्दी पर दबाव बढ़ता गया और अतीत का पुलिन्दा एक-एक यादों को उगलता गया। सोचा था अतीत भूल गई पर आज एक टाँका टूट गया तो स्वतः ही सारी सिलाई उघ ने लगी।

यौवन का प्यारा, सुनहला, मदमाता सोलहवाँ वसंत रुचि पर अपनी छाप छो चुका था। यह वह चरण था जहाँ हर कुमारी को सुरख़ाब के पर लग जाते हैं, बात-बेबात दर्पण में निहारना अनिवार्य हो जाता है। आँखों पर एक अदृश्य रंगीन चश्मा चढ़ जाता है जो सब कुछ ही रंगीन कर देता है। दुनिया 'सिया राम मय मैं जानीं' की जगह 'प्रेम मय मैं जानीं' ज्यादा युक्तिसंगत लगती है।

रुचि जब इस दौर से गुज़र रही थी तभी वह विनोद के सम्पर्क में आई, अकस्मात् ही उससे मिली थी। सुरीला गला उसने माँ से विरासत में पाया था। माँ, पापा से शादी कर छोटी उम्र में ही कैनडा आ गई थीं और उस समय यहाँ भारतीय ही बहुत ज्यादा नहीं थे फिर भारतीय संगीत क्या होता ! पर हाँ, रुचि के समय तक भारतीय कला मन्दिर खुल गया था और माँ ने अपना पुराना सपना बेटी की आँखों से देखना चाहा था।

रुचि कला मन्दिर की शिष्या थी और यहीं पर जब वह अट्ठारह की देहलीज़ पर कदम रख रही थी, विनोद छात्र के रूप में आ उसके दिल में भी पहुँच गया था।

विनोद भारत से छात्रवृत्ति पर यूनिवर्सिटी ऑफ टोराण्टो आया था। वॉयलिन और तबले का शौकीन, देखने में भी बुरा नहीं और 'यथा नाम तथा गुण' अपने नाम की तरह ही विनोदप्रिय, सदा हँसने-हँसाने वाला विनोद कब रुचि के हृदय में सेंध लगा उसे चुरा ले गया, रुचि को पता ही नहीं चला।

रुचि माँ-बाप की अकेली सन्तान थी। विनोद रुचि के घर के पास ही रहता था और अक्सर ही संगीत स्कूल के बाद शाम को उसे घर छो दिया करता था। संगीत-प्रेमी इस परिवार और घर से दूर बैठे इस युवक में परिवार का-सा नाता जु ने लगा था। रुचि के माता-पिता विनोद की सभ्यता,

शालीनता, सुशीलता व शिष्टता से प्रभावित थे। यह मित्रता धीरे-धीरे कुछ और परवान चढ़ी पर इसने कभी मर्यादा की पराकाष्ठा को नहीं लाँघा और ना ही बिल्कुल 'ओपन' खुलेपन में आई। बात 'कुछ उगली और कुछ निगली' वाली ही रही। बात सबके दिलों में थी और वहीं ज्यादा रही। कुछ संकेतों से ही थो ी-बहुत वातावरण में लहराती रही।

पर उम्र तो अपनी अबाध गति से बढ़ती रहती है। रुचि को इक्कीसवाँ लग गया था और माँ-बाप अब उसके हाथ पीले कर, कन्यादान कर गंगा नहाना चाहते थे, अपने उत्तरदायित्वों से मुक्त होना चाहते थे।

विनोद कुछ अपनी पढ़ाई की वज़ह से और कुछ अपनी पारिवारिक परिस्थितियों के कारण कुछ सालों तक विवाह के लिए असमर्थ थे, विवश थे। और इधर माता-पिता सुयोग्य वर राकेश के मिल जाने पर ज्यादा समय इन्तज़ार के पक्ष में न थे।

और इस तरह रुचि राकेश की पत्नी बन अपने को उसी साँचे में ढाल जीवन के दूसरे चरण में पदार्पण कर गई। उसने पीछे मु के देखना उचित न समझा। हालाँकि राकेश विनोद के बारे में जानते थे और उन्होंने कभी भी रुचि को उससे मिलने के लिए मना नहीं किया। पर रुचि स्वयं ही इस अध्याय को यहीं ख़त्म कर देना चाहती थी। नये जीवन की शुरुआत नये ढंग से करना चाहती थी। विनोद और उसके सम्बन्ध उसी तरह मधुर व शिष्ट रह वहीं ख़त्म हो गये; न कटुता थी ना ही अशिष्टता। दिल ही दिल में जो प्यार के अंकुर पनपे थे वो बाहर आ हवा-पानी न पा वहीं दम तो दफ़न हो गये थे।

माँ ने ही एक बार जब वो आई थीं तो बताया था कि विनोद किसी प्रोजेक्ट हेतु यूरोप चला गया है। फिर उ ती-सी ख़बर मिली कि उसकी शादी हो गई है। इसके अतिरिक्त उसका विनोद से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया था और ना ही वह रखना चाहती थी, केवल विनोद की मंगलकामना के सिवा। वो ठीकठाक है बस इतना ही उसकी सन्तुष्टि के लिए काफी था। वो अतीत को अतीत में ही छो , वर्तमान में अपनी गृहस्थी में पूर्णतः रच-बस राकेश के प्रति पूर्णतः समर्पित थी। एक पुराने सूखे फल की तरह गिर कर मिट्टी में अदृश्य हो गया था अतीत। राकेश ने भी उसे भरपूर प्यार दिया। कभी भी किसी शिकायत का मौका नहीं दिया।

ढाई साल पहले अचानक हार्ट-अटैक से हुई राकेश की मृत्यु ने उसे झकझोर कर रख दिया है। अकेलापन काटने को दौ ता है। माँ-बाप तो चले ही गये थे, बच्चे हुये नहीं। अब तो बस वो और झबरी ही इस मकान में रह गये हैं। झबरी भी बूढ़ी हो रही है। चौदह पार कर रही है। कुछ तो बुढ़ापा और कुछ मालिक राकेश का ग़म, दोनों ने उसे भी जीवनहीन-सा बना दिया है। जानवर है, पर ममता तो जानवरों में भी होती है; फिर कुत्ते तो ज्यादा ही खैरख़्वाह, वफ़ादार होते हैं।

रुचि का कई बार ईश्वर पर भी आक्रोश उतरता है। क्रोध भी आता है और रोना भी। अपनी ही दयनीयता कचोटती है। समझ नहीं पाती कि क्या कसूर किया था जो भगवान ने उससे राकेश को छीन लिया। क्या इस बात के लिए अभी समय उचित था ! चींख कर ईश्वर से पूछ उठती है कि राकेश को इस अधपकी उम्र में तूने क्यो छीना? क्यों तूने यह आग लगाई? आग तूने लगाई पर धुआँ मुझे झेलना प रहा है। भावनात्मक प्रदूषण से उसका बचना असम्भव है। कहते हैं कि, 'टाइम इज़ ए ग्रेट हीलर', लेकिन घाव से घाव बढ़ते भी हैं, ऐसा उसने सोचा न था। संक्रामकता से संघर्ष नहीं पलायन कर सन्तोष धारण करना चाहा था। राकेश तो मौत की सीढ़ी चढ़ इस जहाँ के दुखों से पार हो गये, मैं इन बची श्वासों को लेकर कहाँ जाऊँ, रुचि चींख उठी थी ! मौत ज़िन्दगी से आसान होती है क्योंकि उसमें दर्द की पुनरावृत्ति नहीं होती है। ज़िन्दगी की तरह मौत लम्बी भी नहीं होती है। ठीक ही कहते हैं कि जीना एक कला है जो शायद सबको नहीं आती . . . । और फिर रुचि को तो अपना बाँझपन भी दुखता है। सोचती, काश कोख से कोई अंकुर पनपा होता, उसी के ही सहारे जीवन काट देती।

छः महीने पहले लिफ़ाफे पर एक अनजानी लिखावट देख रुचि चौंक गई थी। पोस्ट-मार्क कैलगरी का था। सोच रही थी कि वहाँ तो किसी को नहीं जानती। पर लिखावट न जाने क्यों अनजानी होते हुये भी कुछ पहचानी-सी भी थी।

लिफ़ाफा फा कर पत्र खोलते हुये नीचे लिखे विनोद के नाम ने उसे चौंका दिया। विनोद ने राकेश की मृत्यु पर खेद प्रकट करने हेतु खत लिखा था। उसे हाल ही में राकेश के किसी पुराने

सहयोगी से पता चला था। विनोद की पुत्री विधु शादी के बाद कैलगरी में बस गई थी। विनोद और उसकी पत्नी भी रिटायर होकर पुत्री के पास ही घर लेकर रहने के उद्देश्य से कैलगरी आ गये थे पर कुछ ही महीनों में विनोद की पत्नी की कार दुर्घटना में मृत्यु हो गई।

रुचि ने भी विनोद की पत्नी की मृत्यु का खेद प्रकट करते हुये पत्र लिखा और फिर पत्रों का जो सिलसिला शुरू हुआ वो अब तक चलता ही रहा। औपचारिक से अनौपचारिक होता गया, व्यक्तिगत होता गया।

एक-दो बार फोन पर विनोद ने उसे कुछ समय के लिए कैलगरी आने का निमंत्रण दिया भी पर रुचि संकोचवश स्वीकार न कर पाई।

एक बार विधु किसी कान्फ्रेंस में टोराण्टो आई थी। रुचि के पास भी आई। बातों के दौरान एक बार वो रुचि के बहुत ही निकट आकर उसके हाथ पक कर बोली थी, 'आंटी, बात तो मैं शायद दादी-अम्माँ जैसी कर रही हूँ, पर आप ही सोचिये कि इस उम्र में जबकि साहचर्य की सबसे ज्यादा जरूरत है, आप और पापा अकेलेपन की त्रासदी, चुभन क्यों सहते रहें? और फिर आप दोनों तो एक-दूसरे को सालों पहले से जानते हैं।' रुचि की भौंहें ऊपर उठी थीं, विधु ने प्यार से उसका हाथ सहलाते हुए कहा था, 'हाँ आंटी, पापा ने मुझे सब कुछ बता दिया है। शायद मिलना आप दोनों की नियति ही है जो आज इतने वर्षों बाद पूरी हो रही है।'

विधु आगे बोली, 'आंटी, यदि यही हादसा मेरी शादी से पहले हुआ होता तो शायद मेरा रिएक्शन कुछ और होता, पर अब मैं सोच सकती हूँ कि इन हालात में मैं कितना तन्हा होऊँगी। अकेले एकाकी दुखी रह कर आप लोग न राकेश अंकल और न ही माँ की आत्मा से न्याय कर रहे हैं। दोनों में से कोई भी यह नहीं चाहेगा कि आप ये एकाकी जीवन घुट-घुटकर बिताएँ। यदि आप दोनों इकट्ठे हो हँसी-खुशी जीवन बिताएँगे तो उनकी आत्मा को तो शांति ही मिलेगी। उन दोनों ने ही हरदम आप दोनों की खुशी ही चाही है।'

'पापा और आप, दोनों ही इतना समय अकेले रह कर एकाकीपन के श्रापों का अनुभव तो कर ही चुके हैं जो उम्र के साथ-साथ बढ़ता ही जाएगा, घटेगा नहीं।' और विधु ने रुचि को आत्मीयता के आगोश में समेट लिया। विधु का 'प्रपोजल' उस वक्त आया जब रुचि की कैफियत उस बच्चे की तरह थी जिसकी माँ घर पर न हो और अचानक गली में खूबसूरत रंगीन गुब्बारे बेचने वाला आ जाये।

प्रत्यक्ष में रुचि ने प्यार से विधु के सिर को थपथपाकर कहा - 'चलो और कुछ नहीं तो कम-से-कम मुझे एक बुद्धिमान प्यारी-सी बच्ची, दादी अम्माँ ही सही, मिल तो गई है।'

विधु मुस्कुराकर बोली, 'आंटी मुझे टालिए नहीं। चलिए, दादी अम्माँ न सही, फिर भी आपको मैं नन्हीं-मुन्नी बच्ची के रूप में नहीं, वरन् शादी-शुदा पुत्री के रूप में मिली हूँ और उसके ही अनुभवों से बात कर रही हूँ, अतः....'

रुचि गम्भीर होकर बात काटते हुए बोली, 'तो फिर तू ही बता, इस बुढ़ापे में....'

विधु ने रुचि को आगे न बोलने दिया, बोली, 'कौन-से बुढ़ापे की बात कर रही हैं आप आंटी? आप बूढ़ी कहाँ हैं? आप तो इतने संवेदनशील, प्यार-भरे दिल की मालिक हैं जो सदा जवान रहता है और असंदिग्ध रूप से इसका प्रभाव शरीर पर भी प ता है जहाँ प्रौढ़ता का असर बिल्कुल वर्जित है। आपके सलोने, गोरे मुखमंडल पर ये गहरी झील-सी चमकती आँखें न जाने कितने नायाब, अनमोल मोती अपने अंदर छुपाए हुए हैं। आपके अधरों के किनारे एक नन्हीं-सी मुस्कान हमेशा कलाबाजी खाने को तत्पर दिखाई देती है। क्षण-भर में वह सीधी ह्रदय की गहराइयों में उतर जाती है, और सबसे खास बात है, आपकी मधुर वाणी। बोलते वक्त आपके होठों की हरकत ही नहीं बल्कि आँखों का अन्दाज़ भी निराला और दिलकश हो जाता है। शायद इसे ही बोलते, मुस्कुराते तथा हँसते हुए खुशगवार नेत्र कहते हैं।'

कुछ समय बाद विनोद का पत्र आया कि - 'रुचि, मैंने एक बार तुम्हें खो दिया था, पर इस बार तुम्हें खोने के लिए तैयार नहीं हूँ।'

विनोद ने आगे लिखा था कि, "तुमने लिखा है कि - 'उम्र के इस दौर तक आकर मुझे लगता है कि हम सब वैसे ही जी सकते हैं जैसे जी रहे हैं। इससे हट कर सोचना भी शायद गलत है। वक्त के रेशों पर फिसलते, स्थितियाँ हमें अपने बहाव में जहाँ ले जाती हैं, वहीं बहना हमारी नियति है। यह बात मेरे लिए भी उतनी ही सच है जितनी तुम्हारे लिए। हमारा मिलन राकेश और

इला की स्मृतियों से क्या विश्वासघात नहीं होगा?' - पर मैं तुम्हारी इस उपर्युक्त मान्यता को हरगिज़ नहीं मानता। बहाव के साथ निरर्थक बहना जीवन के किसी भी दौर का सार्थक उद्देश्य नहीं है। हमारी रूहों पर, हमारे बुढ़ापे पर उनकी यादों के नक्श हैं और सदा रहेंगे, पर यादों से ज़िन्दगी तो नहीं कटती ! तुम्हारा यह सोचना भी सर्वथा अनुचित है कि हम इला व राकेश की स्मृतियों के साथ विश्वासघात कर रहे हैं। उनके जीवनकाल में हम दोनों ही तन और मन दोनों से ही उन पर पूर्णतः समर्पित रहे। पर मरने वालों के साथ कोई मर तो नहीं सकता। इस धरती पर हर इंसान अपने श्वास पूरे करके ही जाता है, उससे पहले नहीं। जीवन जीने के लिए हर एक को एक सम्बल की आवश्यकता होती है जो हम दोनों एक-दूसरे के लिए बन सकते हैं।'

उसने आगे लिखा था - 'क्या ग़म के अँधेरों में डूबे रहना ही मृत प्रियजन के प्रति श्रद्धा व आस्था का एकमात्र मापदंड है? इला और राकेश के प्रति हम दोनों में जो प्यार है, उसकी हृदय में अपनी विशेष जगह है और हरदम बनी रहेगी, पर उसे 'प्रूव' करने के लिए जीवन का प्रत्येक क्षण रोते हुये बिताना न आवश्यक है और न ही सम्भव। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि यह स्वस्थ मानसिकता भी नहीं है। तुम्हीं बताओ, यदि परिस्थिति फ़रक होती और तुम्हारी जगह राकेश होता तो क्या तुम यह चाहती कि जिसे तुमने इतनी शिद्दत से चाहा है वह तुम्हारे बाद जीवन के शेष दिन ग़म और सिर्फ़ ग़म के अँधेरों में घुट-घुटकर काटे, हास्य की एक क्षीण-रेखा भी अपने मुखमंडल पर तो क्या आस-पास भी न फटकने दे, नहीं तो तुम्हारे प्यार का अपमान होगा, विश्वासघात होगा। मुझे विश्वास है कि तुम ऐसा न चाहतीं, तो फिर यह क्यों सोचती हो कि राकेश और इला ऐसा चाहेंगे। क्या राकेश तुम्हारे प्रति कम समर्पित था या उसका प्यार तुम्हारे प्यार से कम था जो तुम्हारी और उसकी विचारधारा में इस बात पर अंतर हो। जो राकेश जीवन-पर्यन्त जी-जान से तुम्हें सुखी व खुश रखने के लिए प्रयत्नशील रहा वो किसी भी अवस्था में तुम्हें दुखी देखना चाहेगा?'

'मैं टोराण्टो आ रहा हूँ। सारा इन्तज़ाम होने पर फ़ोन से तुम्हें फ्लाइट आदि की सूचना दूँगा। मिलने के बाद भी तुम शादी से मना करना चाहो तो तुम्हें पूरा अधिकार है। बस इतना ही कहना चाहूँगा कि अपने मन की गहराइयों में झाँककर, जो भी मैंने लिखा है, उस पर कम से कम एक बार जरूर मनन कर लेना।'

रुचि को लगा कि विनोद समुन्दर की तरह उसे बुला रहा है और वह डरी और सहमी-सी जर्जर कश्ती की तरह किनारे से लगती जा रही है। दूसरी ओर उसे लगा मानों वह स्वयं सिंधु हो और सिंधु के उबलते और सिमटते स्वभाव की तरह उसके जीवन में भी भावनाएँ दिन में अपनी सीमा की चौखट में करवटें बदलती रहती हैं। सिंधु के किनारे पर प ी किनारे की रेत, धूप में, भिखारी के रीते कटोरे की तरह याचनाग्रस्त हो जाती है, पर सिंधु अपने विवेक की सीमाओं में बँधा उससे दूर ही दूर जाता रहता है। पर रात में, अकेलेपन के सूनेपन में भावनाएँ उफन-उफनकर सीमा-चौखट तो तीं, किनारे की रेत पर 'कार्बोनेटेड ड्रिंक' के झाग की तरह अपना फेन ही फेन फैला देती हैं। दिन की प्यासी रेत को देख क्या कोई कह सकता है कि इस रेत ने रात भर सिंधु को चिंचो ा है।

रुचि का मन कटी पतंग-सा पे की मुंडेर पर त्रिशंकु की तरह लटका हुआ है। नए सपने सँजोने से डर लगता है और राकेश की मौत जहाँ एक ओर रात्रि के पहरों को दुःस्वप्नों की विभीषिका में धकेल देती हैं, वहीं दिन यथार्थ के चंगुल में फँसकर छटपछाने लगता है।

रुचि सोचती है कि क्या रिक्त भी रिक्त को भर सकता है। नहीं. . . .रिक्त सिर्फ़ रिक्त के साथ मिल सकता है. . . .दोनों की भूमिकाएँ एक-सी हैं. . . .।

पर फिर रुचि को लगा कि जो छूट जाता है और फिर कभी नहीं मिलता, वही तो अतीत है। ईंट-ईंट चूना झरा एक-एक टूटा क्षण बस स्मृति की धरोहर बन कर रह जाता है। राकेश की स्मृतियों से मन कल्पना-लोक में विचरण कर बहलाया तो जा सकता है, पर राकेश की भौतिक, सशरीर कमी के कारण ठोस सांसारिक जीवन जीना असम्भव नहीं तो सरल भी नहीं है।

बाहर 'हार्डी मम्स' और 'फॉल एस्टर' की दहकन में से तपिश टूट-टूटकर झर रही थी और लाली में से एक गहरा नशा झलक रहा था। रुचि, गंधयुक्त उग आये विनोद के प्रीति-वृक्ष को बार-बार तने से काटने का प्रयास कर रही थी, पर ज है तो फिर तना बढ़ ही जाता है. . . .कोंपलें, टहनियाँ निकल ही प ती हैं। पत्ते, फूलों की खुशबू की बयार पर झूम कर, पंखा बन, उसके जलते मन पर शीतल झोंके फेंक ही जाते हैं। इस बात के लिए समय उचित है या नहीं, या उम्र उचित है

या नहीं, इससे उम्र की गति को, समय को, क्या लेने-देना। समय किसी के लिए रुकता थो` ही है ! वह तो निर्झर बस चलता ही रहता है, अपनी ही सनक में। गतिहीनता नहीं, गतिशीलता ही उसकी नियति है। उम्र का विचार कर रुचि ने बार-बार तने पर प्रहार किया, पर ज में जो अ गया है उस अविचलित को निकालना संभव नहीं लग रहा है और बार-बार तना काटकर परितोष पाना भी मुश्किल है। हालाँकि विनोद से संबंध टूट गया था, पर संदर्भ बार-बार सजीव हो उठता है। रुचि सोचती है विनोद की गंध को लेकर क्या करूँ ! संबंध की हर संधि के टूट जाने के बाद भी अवशेष अलग नहीं होते हैं। जीवन इन अवशेषों का ठाकुरद्वारा लगता है। रुचि की रूह पर विनोद की यादों के नक्श उभरते ही गए।

रुचि को लगता है कि जब आदमी दर्पण देखता है तो उसे सिर्फ़ अपना चेहरा दिखाई देता है, लेकिन जब वह दर्पण में उभरी अपनी ही आँखों में झाँकता है तो एक लम्बी सुरंग में पहुँच जाता है। और आज इस सुरंग में उसे अँधेरा-ही-अँधेरा दिखता है, और दिखता है रहे-सहे जीवन का वो खंडहर जो उन दीमक, चमगाद , की`-मको ों से भरा है जो दंश-ही-दंश मारने पर उतारू हैं। वो इस अँधेरी सुरंग में जाने से डरती है।

हर वक्त कंठ में विष सब कोई नहीं रख सकता है। हर कोई नीलकंठ नहीं बन सकता है। कोई विरला ही बन सकता है, बाकी सब तो उगल कर सामान्य हो जाते हैं। अगर ऐसा न हो तो सृष्टि का चलना मुश्किल हो जाये।

रुचि को महसूस होने लगा था कि सजे-सजाये, सुविधापूर्ण घर की ठंडी दीवारें उसे बेजान किये दे रही हैं। विनोद के जीवन्त मानस की ऊष्णता का मोह रुचि को अपनी ओर खींच रहा था। एक तरफ रुचि जमते-जमते 'आइस-बर्ग' हिम-खंड में तब्दील नहीं होना चाहती थी, दूसरी ओर लोगों की बातों के खौफ़ से सत्ताईस साल का मो मु कर पुनः-पुनः अ तालीस साल की स क पर आ जाती थी। रुचि ने सप्रयास, इस अकेलेपन के दुख को ओढ़ने की बजाय, इसकी केंचुल से निकलने का प्रयास किया।

रुचि एअर-पोर्ट के लिए तैयार हो रही थी। समझ नहीं पा रही थी कि किस तरह से तैयार हो। उमंग भी थी और हिचकिचाहट भी। क्या इस उम्र में उसका यह कदम ठीक है, का शशोपंज कुरेच रहा था। पर बढ़ती उम्र की एकाकी भयावहता का अंदेशा और भी ज्यादा अशांत कर रहा था। भावना को तो वैसे भी तर्क के तराजू पर तौलना मुश्किल होता है पर यहाँ तो मस्तिष्क का तर्क भी 'हाँ' के पक्ष में अपना पल ा झुका रहा है। ऊपर से विनोद के साथ बिताये वो वर्ष जो अपनी अनगिनत यादों के साथ अब तक अतल की गहराईयों में सो रहे थे, ढीठ बच्चों की तरह, जग-जगकर बाहर निकलने के लिए मचल रहे थे।

रुचि एअर-पोर्ट के रिसेप्शन एरिया में ख ी, पारदर्शक शीशे से आने वाले यात्रियों को देख रही थी कि दिल की ध कन रुक-सी गई और फिर अनियमित-सी हो गई। जो दिल अभी तक एक तरन्नुम में बज रहा था, वो अब रुक-रुककर चलने लगा। सामने से विनोद आ रहे थे। वो ही पुराना अंदाज़, हँसता-सा विनोदी चेहरा, शरारती आँखें....कहीं कुछ भी तो नहीं बदला....बस कनपटी की कलमें सफेद हो रही थीं और कुछ चाँदी की तारें सिर में लुका-छिपी खेल रही थीं। एक और अंतर आया था, आज मुँह में अनजला पाइप अटका हुआ था। शायद सफर के दौरान धूमपान निषेध की वजह से इस्तेमाल न कर पाने के कारण, स्वाभाववश तलब की बेसब्र बेताबी से मजबूर, मुँह में अटका लिया था ताकि सुविधा मिलते ही जल्दी से जला लें, जिससे यथाशीघ्र कश लेकर अभी तक हुए विलम्ब की कुछ तो क्षति-पूर्ति हो ही जाये। अपनी इस मीमांसा पर रुचि स्वयं ही मुस्कुरा दी।

विनोद की छवि ने सारी शंकाओं के बाँध को तो दिया था। दिल पर प` प्रश्नों के बोझ एक-एककर किन अदृश्य हाथों से हटते गए समझ ही नहीं पाई, बस इतना ही जाना कि अब वहाँ बोझ का भार नहीं, उमंग की तरंगें हिलोरें ले रही हैं। रुचि की बाँहें विनोद की बाँहों के आगोश में समा जाने को उत्कंठित हो उठीं और रुचि का चेहरा उस उम्र में भी लाज के गुलाल से गुलाबी हो उठा। लाली गहने की तरह कपोलों पर सज उठी। लाज ही तो भारतीय नारी का अद्वितीय गहना है।

रुचि बहुत कुछ कहना चाहती थी पर थरथराते होंठ, झिलमिलाते आँसुओं के बीच, उसका गला भिंच गया। चेहरा भावों के उद्वेग से विकृत हो गया। छाती के भीतर हत-पिंड में विचित्र-सी बेचैनी कौंच गई। विनोद आगे बढ़े व रुचि उनकी बाँहों में समा गई।

रुचि का सारा बाँध यकायक टूट गया जैसे हठात् किसी पत्थर के ज़रा-से भी हट जाने से, पूर्ण अवरोध न भी समाप्त हो तो भी उससे बने ज़रा-से छिद्र के खुलते ही जलधारा का फूट प ना और अपने बहाव के साथ पूरे अवरोध को बहा ले जाना, या पर्वत-शिखर के स्पर्श-मात्र से किसी भरी-बदली का उम प ना। पता ही नहीं लगा कब विनोद के हाथों से सहलाया जाता रुचि का सिर विनोद के सीने पर टिक गया। रुचि की आँखें विद्युत्-करण्ट की गति से लबालब झील बनीं, और फिर आँसुओं की जलधारा से न केवल विनोद का सीना भींगता रहा, वरन् उसकी आँखें भी अछूती न रहीं, सजल हो उठीं। शब्द, बुदबुदाहट के आगे की चौखट लाँघकर पार न कर सके। फिर एक अव्यक्त मौन ने लम्बे समय तक उन्हें घेर लिया। अश्रुधारा बहती रही....विनोद का सीना, रुचि का सिर भींगता रहा....। शब्द छोटे प गए। सम्बोधनों ने चुप्पी साध ली। मुखरता गूँगी हो गई थी किन्तु भावनाएँ जाग्रत हो मुखर हो चुकी थीं।

स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आत्म-गुंजन	(आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन एवं संपादन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
बौछार	(संकलन एवं संपादन)
काव्य हीरक	(संकलन एवं संपादन)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख)
उपनिषद् दर्शन	(अध्यात्मिक)
काव्य-धारा	(संकलन एवं संपादन)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय
पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित